TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

TIGHT BINGING BOOK

THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182324

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 S94K Accession No. P. G. H2195

Author सुधीन्द्र .

Title काव्यश्री- 1. 1953 .

This book should be returned on or before the date last marked below.

काव्य-श्री

भाग १

रस आलोचना व निबन्ध

लेखक

डॉ० सुधीन्द्र, एम. ए. पी-एच. डी.

राजपूत कालेज, आगरा।

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन,

मोतीकटरा, आगरा।

मूल्य ।।।)

प्रकाशक
फूलचन्द गुप्त
संचालक
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा।

मुद्रक
राष्ट्रीय ब्लाक वर्क्स, आगरा।

—ः अपनी बात ः—

'काव्य-श्री' के चारों खण्ड–रस अलङ्कार, पिंगल और गुणदोष स्वतन्त्र रूप में भी महत्त्वपूर्ण होने के कारण इन्हें बहुसंख्यक शिक्षार्थियों की आवश्यकता के लिए प्रथक प्रथक रूप में भी सुलभ किया जारहा है।

'रस' के इस विवेचन में शास्त्रीय विषय को सरल से सरल रीति में समझाने का प्रयास मैंने किया है। रस प्रक्रिया की एक नई बौद्धिक व्याख्या भी दी है। जो उसे समझने में सहायक होगी। संचारी भावों को हृदयंगम करने की दृष्टि से उनके लक्षणों को पद्य-बद्ध किया गया है।

आशा है, रस की यह छोटीसी पुस्तिका शिक्षार्थियों को विशेष उपयोगी होगी।

आलोचना व निबन्ध

कृष्णायन, आगरा।
१, मई, १९५३

—सुधीन्द्र

विषय-सूची

पृष्ठ

रस ... १

(१) काव्य से रस प्राप्ति (२) यथार्थ कल्पना रस (३) प्रक्रिया ...

१—सुप्तावस्था ... ६

२—जाग्रत अवस्था ... १०

३—सक्रिय अवस्था ... १३

४—संचारी (व्यभिचारी) भावों का परिचय ... २०

५—संचारियों का वर्गीकरण ... ४४

६—**रसों का परिचय** ... ४६

(१) शृंगार रस (२) करुण (३) वीर (४) रौद्र

(५) वीभत्स (६) हास्य रस (७) भयानक (८) अद्भुत

(९) शान्त रस

७—**कुछ और रस**

(१) वत्सल (२) भक्ति

८—**साधारणीकरण: शास्त्रीय परिभाषाएँ** ... ७०

रस

रस आनन्द की वह अनुभूति है जो काव्य के पठन, श्रवण और दर्शन से पाठक-श्रोता और दर्शन के हृदय में उनकी आत्मविस्मृति द्वारा तन्मयता और तल्लीनता की सिद्धि करती है।

रस का अर्थ है आनन्द। साधारण भाषा में रस वह वस्तु है जिसका आस्वादन किया जाता है—आस्वाद्यत्वाद्रसः। इस भौतिक जगत् में ऐसे कई पार्थिक या स्थूल पदार्थ हैं जिसका हम आस्वादन करते हैं। सामान्य अनुभव की बात है कि ईख, गुड़, चीनी, मधु इत्यादि ऐसे पदार्थ हैं जिनसे हम एक प्रकार का रस ग्रहण करते हैं और हमें एक प्रकार का भौतिक सुख (Pleasure) प्राप्त होता है। यह तो भौतिक पदार्थ की बात हुई।

इन भौतिक पदार्थों के ऊपर कुछ ऐसे सूक्ष्म और अभौतिक पदार्थ भी होते हैं जिनके एक दूसरे प्रकार का रस प्राप्त होता है और उस रस से जो सुख प्राप्त होता है वह भी भौतिक अथवा लौकिक ही नहीं कहा जा सकता। वह अलौकिक होता है और उसे 'आनन्द' कहना अधिक समीचीन है। मूर्ति, चित्र, और संगीत की संगम 'काव्य' कला से इस प्रकार का लोकोत्तर अर्थात् अलौकिक आनन्द उपलब्ध होता है।

काव्य, जिसमें उपन्यास और कहानी, नाटक और कविता तथा गद्य-गीत समाविष्ट हैं, इसी प्रकार के 'लोकोत्तर' आनन्द का स्रष्टा है। इसी 'आनन्द' को काव्यशास्त्र में 'रस' नाम से पुकारा जाता है।

रस काव्य में आत्मा-रूप से प्रतिष्ठित है।

काव्य के दो पक्ष हैं, शब्द और अर्थ 'शब्दार्थौसहितौकाव्य'। इन दोनों में पार्वती और परमेश्वर की भांति अभिन्न सम्बन्ध है—'वागर्थाविव सम्पृक्तौ पार्वतीपरमेश्वरौ' कहकर मानो कालिदास ने इसी का विलोम कह दिया था।

'शब्द' केवल एक स्थूल माध्यम है जिससे कवि का अभीष्ट 'अर्थ' पाठक और स्रोता तक पहुँचता है; इसलिए शब्द में ही 'अर्थ' अन्तर्हित रहता है। पाठक और स्रोता उसी 'अर्थ' को ग्रहण करके उससे अपने मन को अनुरंजित करता है। 'अर्थ' में यदि यह 'अनुरंजन करने की शक्ति' विद्यमान् है, तो यह 'अनुरंजन'-कार्य सम्भव है, अन्यथा नहीं। इस अनुरंजक अर्थ को ही 'रमणीय अर्थ' भी कहा जाता है। रमणीय का अर्थ है 'मन रमाने योग्य'। जिसमें मन रम जाय, वह रमणीय होता है क्योंकि वह अनुरंजक होता है। इसलिए 'रमणीयता' और 'अनुरंजन' एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं।

मन के अनुरंजित होने पर ही उस लोकोत्तर आनन्द की उपलब्धि होती है जो भौतिक सुख से ऊँची कोटि का है। इसका अर्थ यह हुआ कि शब्द का अनुरंजक अर्थ ही, रमणीय होकर, आनन्द की उपलब्धि करता है।

जो 'शब्द या कथन' इस प्रक्रिया (process) के द्वारा, 'रमणीय अर्थ के माध्यम द्वारा', मन को आनन्द प्रदान कराता है उसे 'काव्य' की संज्ञा दी गई है—रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् (पंडितराज जगन्नाथ)।

आनन्द प्रदान करना काव्य का मूल धर्म है।

इसी प्रकार विश्वनाथ ने काव्य की परिभाषा करते हुए कहा था—'वाक्यम् रसात्मकं काव्यम् अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है। जो कथन या वर्णन रस से परिपूर्ण हो, वही रसात्मक हो सकता है और 'रस' का अर्थ होता आनन्द। वास्तव में 'रस' और 'रमणीय अर्थ' भी एक ही वस्तु हैं। जिस वाक्य में रमणीय 'अर्थ' है उसी में रस होता है और वही आनन्द प्रदान कर सकता है। इसलिए दोनों परिभाषाओं (१—'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'—जगन्नाथ २. वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्' विश्वनाथ) में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है; दोनों की कथन-शैली में ही अन्तर है।

'काव्य' से रस की प्राप्ति

काव्य से रस क्यों या कैसे उत्पन्न होता है ?

काव्य मानव-जीवन का दर्शन है, मानव-जीवन का चित्र है, मानव-जीवन की झाँकी है । वह मनुष्य के अन्तर्वाह्य जीवन का प्रक्षेपण है। मैथ्यू आर्नल्ड नामक अंग्रेजी आलोचक के शब्दों में 'काव्य जीवन की की समीक्षा है' (Poetry is the criticism of life)। यथार्थ जीवन की घटनायें ही कवि की कल्पना में उतरकर 'दृश्य-काव्य' किंवा 'श्रव्य काव्य' का रूप ग्रहण कर लेती हैं। काव्य में उन्हीं परिस्थितियों, घटनाओं और चेष्टाओं का तथा अनुभूतियों का चित्रांकन होता है जिन्हें कवि का भावुक हृदय अपनी अन्तःप्रवेशिनी दृष्टि से अपने मानस में संकलित करके अपनी अन्तःस्पर्शिनी अभिव्यक्ति से भावना-प्रवण भाषा में बिखेरकर जगत् को देता है। इस प्रक्रिया के कारण उस काव्य में स्वतः ऐसी क्षमता अथवा विशेषता आ जाती है कि वह काल्पनिक जगत की वस्तु होते हुए भी 'यथार्थ मानव की भाँति सजीव और सप्राण' हो जाती है। दृश्य काव्य अर्थात् नाटक इस परिस्थिति को अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करता है।

हम 'रामचरितमानस' पढ़ रहे हैं या रामचरित का नाटक देख रहे हैं। लक्ष्मण युद्ध में मूर्च्छित पड़े हुए हैं और राम अपने सहोदर की संभावित मृत्यु से त्रस्त और व्यथित हैं। उनके नेत्रों से आँसू, ओठों से विलाप और हृदय से दारुण शोक प्रकट होकर एक ऐसा वातावरण बना रहे हैं कि जिससे पाठक या दर्शक आन्दोलित हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में हमारी बुद्धि और विचारशीलता भी हार मान जाती है। ज्ञानी से ज्ञानी भी यह जानते हुए कि जो कुछ सामने दिखाई दे रहा है यथार्थ नहीं है, वरन् केवलमात्र नाट्य है, अभिनय है, अनुकरण है, ऐसी दशा में शोक-मग्न हुए बिना नहीं रह सकेगा। वह इस असत्य (कल्पना) में भी सत्य के दर्शन करता है। हम इसे यथार्थ की प्रतीति (Illusion of Reality) कह सकते हैं।

प्रश्न उठता है कि इसका कारण क्या है ? वह कौन सा ऐसा आवरण है जो विचारशील से विचारशील मनुष्य के मन पर पड़ जाता है और वह

भोले बालक की भाँति भावापन्न हो उठा है ? नाटक या काव्य ने जो यह 'यथार्थ की प्रतीति' करा दी है, उसका कारण क्या है ? इसके दो आधार हैं–

१ मनुष्य की 'सहृदयता'

प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह कितना ही बुद्धिवादी हो, हृदयवान् भी होता है। कोई भावुक अधिक है, तो कोई अधिक बौद्धिक है और किसी में संतुलित बुद्धि और भावना होती है। व्यक्ति जितना भावना युक्त होता उतना ही किसी परिस्थिति में वह अभिभूत हो सकता है और इसी कारण हम दर्शकों या पाठकों में किसी को आँसू बहाते देखते हैं और किसी को केवल ठण्डी साँस छोड़ते हुए ही; परन्तु अभिभूत हुए बिना कदाचित् ही कोई रहता हो।

'मनुष्य' पत्थर नहीं हो सकता और जो पत्थर होता है वह 'सहृदय' सामाजिक की कोटि में नहीं आता। मनुष्य की संवेदनशीलता ही उसे 'सहृदय' बनाती है। इसी सहृदयता के कारण वह परिस्थिति-विशेष में, भाव-विशेष से अभिभूत हो जाता है।

२. विषय (वस्तु) की प्रेषणीयता

जो संघटन या दृश्य-घटना हमारे सामने है वह एक विशेष प्रकार की परिस्थिति या वातावरण का निर्माण करती है। काव्य में यह वातावरण दर्शक या पाठक या श्रोता को भी उसी प्रकार प्रभावित करता है जिस प्रकार वह यथार्थ जीवन में करता। हाँ, यदि काव्य की परिस्थिति में एक विशेष प्रकार की पूर्णता है तो वह पूर्णरूप से उसे प्रभावित करेगी; यदि किसी सीमा तक उसमें कमी है तो वह उसी सीमा तक उसे प्रभावित करके रह जायगी।

हम इसे एक उदाहरण से समझें। काव्य या नाटक में एक योद्धा शत्रु से युद्ध कर रहा है। उसके अंग-प्रत्यंग में उत्साह की उमंग है। मुख पर ओज और वीरता की मुद्रा है हाथों में बल और वेग है। यह तो स्व ('आत्म') पक्ष हुआ।

दूसरी ओर शत्रु है, जिस पर यह उत्साह और यह ओज, बल और वेग पड़ रहा है। इस प्रकार योद्धा के मन में जो उत्साह का भाव उत्पन्न हुआ वह उसकी कई चेष्टाओं में व्यक्त होने लगा। दर्शक ने यह सब देखा, पाठक ने भी अनुमान किया और 'सहृदय' होने के नाते उसकी समानुभूति योद्धा के साथ हुई। योद्धा के साथ उसका तादात्म्य हुआ और वह भी उसी प्रकार के भाव से अभिभूत होने लगा जिससे वह योद्धा हो रहा है। नाटकीय दृश्य में या काव्य के चित्रण में जो प्रत्यक्ष व्यापार और चेष्टाएँ हैं वे परिस्थिति को सर्वाङ्ग-संपूर्ण बनाकर उसे दर्शक या पाठक के मन में प्रतिबिम्बित कर देती हैं—अर्थात् उस समस्त, क्रिया की प्रतिच्छाया सहृदय दर्शक या पाठक के मन में पड़ती है। इसीको हम 'वस्तु की प्रेषणीयता' कहते हैं।

इस प्रक्रिया से दर्शक, पाठक, श्रोता मनुष्य की सहृदयता के आधार पर विषय, वस्तु या प्रसंग की प्रेषणीयता कल्पना (असत्य) में सत्य का आरोप करा देती है और मनुष्य भावाविष्ट हो जाता है।

काव्य में प्रस्तुत हुई परिस्थिति में भावविशेष का स्थायित्व और सक्रियत्व ही सहृदय मनुष्य के मन में भी समानांतर और समरूप भाव-विशेष की सृष्टि करता है। इसी का संकलन 'रस' कहा जाता है।

यथार्थ और कल्पना

जीवन में हम प्रेम, शोक भय, उत्साह, क्रोध, आश्चर्य आदि मनोवेगों (भावो) में मग्न होकर अपने आपको भूल जाया करते हैं। परन्तु इन मनोवेगों से हमें 'आनन्द' प्राप्त होता है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। शोक से हम दुःखी हो जायँगे, भय से भयभीत हो जायँगे, उत्साह से उत्साहित हो जायँगे, हर्ष से हर्षित, क्रोध से क्रोधित हो जायँगे और प्रेम से प्रेम-मग्न हो जायँगे। 'इन सबसे हमें आनन्द मिलता है—'यह कहना तो सब भावों को एक घाट उतारना है। परन्तु काव्य पढ़ने-सुनने और नाटक देखने में जब हम इसी प्रकार के भावों में बहने लगते हैं, तब हम वास्तव में तो न दुखी होते हैं, न क्रुद्ध, न भयभीत होते हैं न विस्मित। उस समय तो हमारे चित्त में उस विषय के भावावेश

से एक आत्मविस्मृति हो जाती है और यही स्थिति 'रस' है। विविध और विभिन्न भावों के माध्यम से प्राप्त इस तन्मयता को आनन्द की ही कोटि कहना होगा। यह कल्पना से सत्य का आनन्द काव्य से ही प्राप्त होता है, यथार्थ जीवन की परिस्थितियों से नहीं। यही यथार्थ और कल्पना का अन्तर है।

'रस' की प्रक्रिया

मनुष्य के मन में यह 'रस' कहाँ से उत्पन्न हो जाता है और कैसे वह विकसित होता है? इस प्रकार के कई प्रश्न उठ सकते हैं। इसके उत्तर के लिए हमें रस-प्रक्रिया को समझना चाहिए।

रस का बीज : भाव

हमारे मन में, अन्तःकरण में, 'सहृदय' होने के नाते, कई 'भाव' विद्यमान हैं, जो सोते रहते हैं। वे ही 'काव्य में प्रस्तुत परिस्थिति के स्पर्श से, जाग जाते हैं और कार्य करने लगते हैं। इस प्रकार ये भाव ही जाग्रत तथा उद्दीप्त अर्थात् होकर हमारे चित्त में 'रस' के रूप में प्रतिफलित होते हैं।

वस्तुतः यह प्रक्रिया होती काव्य में है जो जीवन का चित्रण है, परंतु प्रतिबिम्बित होती है सहृदय के मानस में। काव्य के पठन-पाठन, श्रवण और दर्शन से मानस का सुप्त भाव जाग्रत और क्रियाशील हो जाता है और 'रस' इस प्रकार अनुभूत होने लगता है।

काव्य में इस प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ हैं। उनका अनुशीलन आवश्यक है।

(१) सुप्तावस्था

'आश्रय' और 'भाव'

'आश्रय'

मनुष्य के मन में 'भाव' विद्यमान रहता है। काव्य में जो प्रसंग या परिस्थिति प्रस्तुत है उसमें कोई चरित्र (या पात्र) उस भाव का धारक होता है। उसी के मन में भाव आश्रित रहता है। उस व्यक्ति को

भाव का "आश्रय" कहा जाता है। 'आश्रय' भाव का पहला अनिवार्य आधार है—इसके बिना भाव निराधार हो जाता है। अनुराग का भाव किसके मन में है, हास, घृणा या शोक किसके मन में है, उत्साह या क्रोध किसके मन में है अथवा शांति या विस्मय किसके मन में है? इन प्रश्नों का उत्तर पा लेने पर हमें भाव का "आश्रय" मिल जायगा।

भाव का वर्गीकरण

'भाव' असंख्य होते हैं। उनकी पूर्णरूपेण गणना नहीं की जा सकती। केवल कुछ सुस्पष्ट भावों को हम कुछ नामों से जानते हैं। इन भावों में कुछ मुख्य होते हैं और कुछ उन्हीं के अंगभूत या उनसे मिलते-जुलते हैं। ऐसे भाव क्षणिक और आनुषंगिक होते हैं। उदाहरण के लिए उत्साह और आशा में उत्साह मुख्य भाव है; शोक और चिन्ता में शोक मुख्य भाव है; भय और आशंका में भय मुख्य भाव है तथा हर्ष और उल्लास में हर्ष मुख्य भाव है शेष गौण या आनुषंगिक हैं।

(१) स्थायी भाव

सब भावों का मन्थन करके मर्मज्ञ मनीषियों ने नौ (९) आधारभूत या मूलभूत भाव-रत्न खोज निकाले हैं। वे हैं—

रति, हास, जुगुप्सा शोक व भय
उत्साह, क्रोध, फिर शम, विस्मय

—अर्थात् (१) प्रेम (रति), (२) हास (३) जुगुप्सा (घृणा) (४) शोक (५) भय (६) उत्साह (७) क्रोध (८) शम या निर्वेद (वैराग्य) और (९) विस्मय (आश्चर्य)। ये भाव ही रस के बीज होते हैं। भाव के बिना 'रस नहीं होता और 'रस' भाव से हीन नहीं होता।

मूलभाव : शाश्वतभाव

ये 'मूल भाव' वे शाश्वत वासनायें हैं जो मनुष्य-मात्र के मन में रहती है। या यों कह सकते हैं कि इन मौलिक भावों से कोई सहृदय मानव अछूता नहीं है। जीवन-निर्वाह या जीवन-रक्षा की आवश्यकता से इनका संबंध है।

ये स्थायी भाव मानव जीवन की कुछ सहज वृत्तियों (शाश्वत वासनाओं) पर आधारित हैं; जैसे—

(१) प्रेम का सम्बन्ध प्रजनन-वृत्ति से है, तो (२) वीभत्स का संबंध विकर्षण से है, (३) हास्य का सम्बन्ध वृत्ति से है, तो शोक का सम्बन्ध अभाव की वृत्ति से है, (५) उत्साह का सम्बन्ध अस्तित्व-स्थापन वृति से है, तोए क्रोध का सम्बन्ध विरोध-वृत्ति से है, (७) भयानक का संबंध पलायन-वृत्ति से है, तो (८) अद्‌भूत का संबंध कुतूहल (Curiosty) वृत्ति से है।

इसी कारण यह उचित ही कहा जा सकता है कि इन भावों का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। ये मूल या मुख्य भाव ही स्थायी भाव होते हैं।

(१) स्थायी भाव और उनकी परिभाषाएँ

१—रति (LOVE)

स्त्री-पुरुष की एक दूसरे के प्रति प्रेम या प्रीति नामक चित्तवृत्ति रति (Love) है । इसे 'राग' (attachment) भी कहा जा सकता है। [देवता के प्रति या पुत्र के प्रति रति आनुषंगिक भाव मात्र है, स्थायी भाव नहीं।]

२—हास (MIRTH)

अंग, वाणी, रूप, क्रिया आदि की बिकृति के ज्ञान से होने वाला चित्त का विकास (अर्थात् उत्फुल्ल होना) हास है।

३—जुगुप्सा (INDIGNATION)

दोष (अवगुण) की प्रतीति से किसी पदार्थ के प्रति उत्पन्न विकर्षण का भाव जुगुप्सा है।

४—शोक (SORROW)

इष्टनाश के कारण होनेवाली चित्त की व्याकुलता (विकलता) शोक है। [स्त्री-पुरुषों की वियोग-दशा में होनेवाली विकलता आनुषंगिक भाव ही होती है।]

५—भय (FEAR)

अनिष्ट की प्रतीति (सम्भावना या आशंका या दर्शन) से होनेवाली चित्त की विकलता भय है ।

इसमें आश्रय अपनी हीनता का अभाव करता है। 'शोक' में अनिष्ट हो जाता है, परन्तु 'भय' में होने की सम्भावना होती है।

६—उत्साह

स्वीकृत शुभ कार्य में प्रकट होनेवाले उल्लास का नाम 'उत्साह' है। धर्म, कर्म युद्ध, दान, दया, देशप्रेम आदि में यह प्रकट होता है।

७—क्रोध (ANGER)

अनिष्ट या अनुचित कार्य करने वाले व्यक्ति के प्रति तीक्ष्णता का अनुभव 'क्रोध' है।

८—शम या निर्वेद

१—अनित्यता के विचार से सांसारिक विजयों से विरति। तथा २—निरीह अवस्था में आत्मशांति से उत्पन्न तोष 'शम' या निर्वेद है।

९—विस्मय (SURPRISE)

अलौकिकता या चमत्कार के दर्शन से उत्पन्न आश्चर्य का भाव 'विस्मय' है।

(२) आनुषंगिक भाव : 'संचारी भाव'

मानव मन के रति (प्रेम) से लेकर विरति (वैराग्य) तक असंख्य भावों में से नौ (९) मौलिक भावों के अतिरिक्त अनेक ऐसे भाव हैं जो आनुषंगिक या अप्रधान हैं।

ये आनुषंगिक भाव हैं—

निर्वेद,	ग्लानि,	मद,	मोह,	विषाद,	शंका, ६
आलस्य,	धैर्य,	मति,	उत्सुकता,	असूया,	११
उन्माद,	स्वप्न,	श्रम,	त्रास,	विबोध,	निद्रा, १७
आवेग,	दैन्य,	अवहित्थ,	वितर्क,	व्रीड़ा,	२२
चापल्य,	गर्व,	जड़ता,	उग्रता,	अमर्ष,	२७
चिन्ता,	अपस्मृति,	मृति,	स्मृति,	व्याधि,	हर्ष। ३३

इनके विषय में यह उल्लेखनीय है कि मूल मुख्य या स्थायी भावों की भाँति इनका मानव की जीवन-रक्षा से सहज सीधा सम्बन्ध नहीं है। हाँ,

स्थायी भावों में से कुछ या कई के साथ इनका सहायक का सम्बन्ध है। इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ये तो मूल (स्थायी) भावों में रँग भर सकते हैं, उन्हें अधिक स्पष्ट और तीक्ष्ण करते हैं।

(२) जाग्रत अवस्था

'विभाव'

'आलम्बन' और 'उद्दीपन'

मन का प्रसुप्त भाव कभी अपने आप जाग्रत नहीं होता। प्रत्यक्ष जीवन में भी हम अपने आप ही, अर्थात् किसी व्यक्ति या वस्तु की अपेक्षा किये बिना प्रेम, क्रोध, शोक, उत्साह, भय, आश्चर्य, घृणा, हास्य आदि व्यक्त नहीं करने लग जाते। 'स्वं' में भाव को जगाने के लिए 'अपर' की आवश्यकता है। भाव के जागरण के लिए वाह्य परिस्थितियों की आवश्यकता होती है।

ये परिस्थितियाँ दो प्रकार की होती हैं—

(१) वे परिस्थितियाँ जो व्यक्ति और वस्तु तक सीमित हैं।

और

(२) वे परिस्थितियाँ जो प्राकृतिक पृष्ठभूमि अथवा मानवीय चेष्टाओं में समाविष्ट हैं।

(आलम्बन)

पहिले प्रकार की परिस्थिति ऐसी परिस्थिति होती है जो भाव के अंकुरित होने के लिए सर्व प्रथम आवश्यक है। इसी पर 'आश्रय' के मन का भाव अवलम्बित होता है। इसके बिना भाव अंकुरित (या उदित) हो ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ, प्रेम भाव के लिए प्रेमी और प्रेमपात्र होने चाहिएँ। शोक के लिए शोक करनेवाले (आश्रय) के साथ साथ जिस पर शोक किया जाय वह व्यक्ति या वस्तु होनी चाहिए; भय के लिए भय करने वाले (आश्रय) के साथ भय उत्पन्न करनेवाला भी तो आवश्यक है। इसी प्रकार अन्य भावों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। आश्रय के साथ-साथ जिस दूसरे व्यक्ति या वस्तु की आवश्यकता हुआ करती है, वही वास्तव में भाव का आलम्बन होता है, इसलिए इसे 'आल-

म्बन' कहा जाता है। इसे हम 'विषय' (Object) भी कह सकते हैं।

('उद्दीपन')

दूसरे प्रकार की परिस्थिति वह होती है जो या तो प्रकृति (Nature)से संबन्धित होती है या स्वयं आलम्बन की चेष्टाओं या क्रिया-व्यापार (action) से। नाटक में अभिनेता को इन्हीं व्यापारों का अभिनय करना पड़ता है।

प्रकृति से सम्बन्धित वस्तु का तात्पर्य है वातावरण से। प्रत्येक भाव के अंकुरित हो जाने के पश्चात् उसके प्रबल होने के लिए अर्थात् उद्दीप्त होने के लिए वातावरण-विशेष आवश्यक है। यदि हमारे मन में एक भिखारी को देखकर शोक या करुणा का भाव जाग भी जाये, तो वह पूर्णतया प्रबल तभी होगा जब हम उसकी दयनीय परिस्थिति या व्यापारों को देखेंगे। इसी प्रकार क्रोध में जिस व्यक्ति पर हम क्रोध कर रहे हैं, उसका हमें भड़काना, ललकारना, मारने को दौड़ना, आदि आदि चेष्टायें हमारे क्रोध को उत्तेजित अर्थात् उद्दीप्त करती हैं। प्रेम के भाव में प्रेम-पात्र का रूप, उसकी चेष्टायें, प्राकृतिक सुन्दरता का वातावरण उद्दीपन के लिए आवश्वक है। इस 'प्रकार की परिस्थितियाँ, जो भिन्न-भिन्न भाव के साथ भिन्न-भिन्न होती हैं, अंकुरित या उत्पन्न हुए भाव को उत्तेजित कर देती हैं अर्थात् बढ़ा देती हैं। उद्दीपन करनेवाली होने के कारण यह परिस्थिति 'उद्दीपन' कही जाती है।

ये दोनों प्रकार की परिस्थितियाँ—'आलम्बन' और 'उद्दीपन'—विभाव कही जाती हैं। 'विभाव' का अर्थ है कारण। वास्तव में ये परिस्थितियाँ ही मन के प्रस्तुत भाव को पहले अकुरित और फिर उद्दीप्त (उत्तेजित) करने में कारण स्वरूप होती हैं। भाव की यह 'जाग्रत अवस्था' है।

आलम्बन विभाव

इस प्रकार समझे जा सकते हैं।

जिस व्यक्ति या वस्तु को देखकर आश्रय में भाव अंकुरित हो जाता है वह आलम्बन है और वे भिन्न भिन्न भावों में भिन्न होती हैं—जैसे रति

(प्रेम) में प्रेमपात्र, हास्य में हास्यास्पद व्यक्ति, रौद्र में शत्रु; शोक में मृत स्वजन आदि।

उत्साह—

साहस की वह उमंग जो कठिन कार्य की ओर प्रवृत्त करे।

उद्दीपन विभाव : निर्देश

उद्दीपन विभाव इस प्रकार होते हैं—

१—रति :

प्राकृतिक सौंदर्य की पृष्ठ-भूमि (चन्द्र, चन्द्रिका, वसन्त, उपवन, निकुञ्ज, शीतल-मन्द सुगन्ध पवन, पुष्प-पराग, भ्रमर-गुञ्जार, निभृत (एकांत) प्रदेश, रंग महल या रंग-शैय्या, स्मरण, चित्र-दर्शन, संगीत इत्यादि। आलम्बन के रूप, गुण तथा चेष्टाएँ।

२—हास :

अंग-विकृति, रूप-विकृति, शब्द-वैचित्र्य, अर्थ-वैचित्र्य की परिस्थितियां।

३—जुगुप्सा :

घृणोत्पादक विषय (वस्तु या पदार्थ) जैसे—दुर्गंध मांस, रुधिर, वसा (चर्बी) आदि। सामाजिक कुनीति-कुरीति का घृणास्पद वर्णन भी इसमें आ सकता है।

४—शोक :

५—भय :

भयोत्पादक विषयों—जैसे भूत, पिशाच सिंह, व्याघ्र, शत्रु, चोर, अग्नि, प्रलय, भूकम्प, विप्लव, मृत्यु आदि के क्रिया-व्यापार तथा स्वरूप।

६—उत्साह :

स्वीकृत कठिन कार्य में रत होने में अपनी गुण-प्रशंसा, आदर्श का स्मरण-चिन्तन आदि।

७—क्रोध :

अनिष्टकारी या विपक्षी विषय (व्यक्ति या वस्तु) के किये हुए अपराध की सत्ता और प्रतीति।

८—शम :

ऋषि-मुनि या ज्ञानियों का सत्संग, सदुपदेश, आत्मज्ञान अथवा शांति-दायक प्राकृतिक भूमि या स्थल (आश्रम, तीर्थ, मन्दिर आदि)।

९—विस्मय :

लोकोत्तर (अलौकिक) या असाधारण कार्य का दर्शन, श्रवण या कथन।

(३) सक्रिय अवस्था

'अनुभाव' और 'संचारीभाव'

अब भाव की तीसरी और अन्तिम अवस्था आती है, जिसमें आश्रय के मन का जाग्रत-भाव सक्रिय या क्रियाशील (active) हो जाता है। यह सक्रियता आश्रय की चेष्टाओं में विदित होती है। ये चेष्टाये वस्तुतः उसके भाव का ही प्रक्षेपण हैं।

अनुभाव (ENSUANTS)

भाव जाग्रत होकर चुप नहीं बैठता, वरन् कुछ क्रिया करता हुआ दिखाई देता है। भाव आश्रय के मन में रहता है, इसलिए उसी को देखने से हम जान सकते है, कि उसके मन में भाव सक्रिय हो गया है।

उदाहरण के लिए लाल-लाल आँखें किये हुए ओठ फड़काते हुए, अपशब्द कहते हुए, काँपते हुए व्यक्ति को देखकर हम अनुभव कर सकते हैं कि उसके मन में 'क्रोध' का भाव सक्रिय है। किसी व्यक्ति को रुदन-क्रन्दन करते हुए, धरती पर लोटते या पछाड़ खाते हुए देखकर हम उसके मन में शोक का भाव सक्रिय होता हुआ अनुभव कर सकते हैं।

इसी प्रकार प्रेम, हास, भय, विस्मय, जुगुप्सा (घृणा) आदि दूसरे भावों को भी हम 'आश्रय' की चेष्टाओं से ही जान सकते हैं। ये 'आश्रय'

की चेष्टाएँ वास्तव में भाव का अनुभव कराती हैं। इसीलिए इन्हें अनुभव करानेवाले अर्थात् 'अनुभाव' कहते हैं।

एक कारण और भी। ये चेष्टाएँ भाव के पश्चात् होती हैं अर्थात् भाव का 'अनु'सरण करती हैं इसलिए भी इनका नाम अनुभाव (अनु-भाव) उचित ही है।

'अनुभाव' असंख्य होते हैं। उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) सात्त्विक अनुभाव

'सत्त्व' अर्थात् रज-तम गुण से रहित मन से समन्ध अथवा जीवन-सत्ता से सम्बद्ध अनु भाव सात्विक अनुभाव हैं। ये यत्न साध्य नहीं हैं।

ये स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाते हैं अतः इन्हें अयत्नज अनुभाव कहा जाता है।

स्तम्भ-स्वेद-रोमाञ्च-कम्प
वैवर्ण्य-अश्रु-स्वरभंग-प्रलय।

१—स्तम्भ (Stupefection)

'स्तम्भ' लज्जा भय, व्यथा से अंग-गति-स्तम्भन

हर्ष, लज्जा, भय, व्यथा आदि से अंग-स्तब्धता 'स्तम्भ' है जैसे 'अधिक सनेह देह भइ भोरी'। (रा० च० मा०)

२—स्वेद (Perspiration)

स्वेद लज्जा, राग, भय से अंग जल-मोचन।

अनुराग लज्जा, भय, आश्चर्य आदि से शरीर में जल-बिन्दु का निकलना 'स्वेद' है।

३—रोमांच (Thrill)

'रोमांच' मुद अनुराग, भय से रोम का हर्षण

अनुराग, हर्ष, आश्चर्य, भय इत्यादि भावों से शरीर के रोम (रोंगटे) खड़े हो जाना रोमांच है 'पुलकि रोम सब अँग भये' (भरि आये जल नैन)—विरगीतः नंददास।

४—कम्प या वेपथु (Trembling)

'कम्प' लजा, रोष, भय से देह का कम्पन'।

अनुराग-द्वेष, क्रोध, भय आदि से शरीर का काँपना कम्य है। अंग-स्पन्दन भी इसी में अन्तर्भूत है।

५—वैवर्ण्य या विवर्णता (Change of Colour)

'वैवर्ण्य' रोष, विषाद, भय मुख-वर्ण-परिवर्तन।

भय, रोष, विषाद आदि से मुख का रंग बदलना वैवर्ण्य है।

६—अश्रु (Tears)

'है 'अश्रु' पीड़ा, क्रोध, मुद से नयन-जल-मोचन'

दुःख क्रोध, हर्ष आदि के कारण नेत्रों का जल-मोचन 'अश्रु' है। जैसे, (पुलकि रोम सब अंग भये) 'भरि आये जल नैन'। (भँवर गीत)

तियकी लखि आतुरता पियकी अँखिया अति चारु चली चल च्वै।

७—स्वर-भंग (Disturbance of Speech)

'स्वरभंग' मद, भय, मुद, व्यथा से कण्ठ का विगलन।

मद, भय, हर्ष, पीड़ा आदि से स्वर-विकार या गद्गदता जैसे 'कण्ठ घुटे गद्गद् गिरा बोले जात न बैन' (भँवर गीत)

८—प्रलय (Fainting)

'है 'प्रलय' सुख-दुःख भार से क्षण चेतनापहरण।'

सुख-दुःख के आघात से निश्चेष्टता या चेतना-शून्यता 'प्रलय' है।

(ख) कायिक (आंगिक) अनुभाव (Physical Indications)

कायिक या आंगिक अनुभाव आश्रय की वे चेष्टाएँ हैं जो अंगों में दिखाई देती हैं। परन्तु वे यत्न-साध्य हैं; अयत्नज (सात्विक की भाँति) नहीं। आंगिक अनुभावों की इयत्ता नहीं है और न इनका पृथक्-पृथक् नामकरण ही किया गया है। भाव-विशेष के उद्दीपन में अनुभाव इस प्रकार हो सकते हैं—

रति (प्रेम) के भाव में :

(संयोग पक्ष)

स्निग्ध भाव से अवलोकन, भ्रूचालन, भुजाक्षेप, स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन आदि ।

(१) कालि हूँ कलिन्दी तीर चितयो अचानक ही,
दोउन को दोऊ मुरि मृदु मुसुकाइबो ।
दोऊ परैं पैयाँ, दोऊ लेत हैं बलैयाँ उन्हें,
भूलि गईं गैयाँ इन्हें गागरि उठाइबो ॥

(२) बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी ।
पिय वन चितै भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरी छे, नैननि—
निज पति कहेउ तिनहिं तिय सैननि ॥

(तुलसी : रामचरितमानस)

(वियोग पक्ष)

रुदन, क्रन्दन, हाहाकार, कृशता, छटपटाना, मलिन रहना ।

(१) लोचन नीर कृपन के धन लौं, रहत निरन्तर लोचनन कौन ।
'हा' धुनि खगी लाजपिंजरी मँह, राखि हिये बड़े बधिक दृढ़ि मौन ॥

(तुलसीदास)

(२) पीले पत्तों की शय्या पर तुम विरक्ति सी मूर्च्छा - सी ।
विजन-विपिन में कौन पड़ी हो विरह मलिन दुख विधुरा-सी ॥

(पंत)

जुगुप्सा (घृणा) के भाव में :

थूकना, मुँह फेरना, नाक भौं सिकोड़ना, धिक्कार, थुत्कार आदि ।

हास्य के भाव में :

आँखों का संकुचित होना, मुँह की बतीसी खुलना, कभी कभी आँसू झरना, लोट पोट होना ।

उठि हेलि मिलो या सहेलि सी यों ,
कहि कंठ से कण्ठ लगाइ लई ।

भरि भेंटति अंक निसंक उन्हें
वे मयंकमुखी मुसुकाइ गईं ।
(२) एक संग ऐसी खिल-खिल कर उठी भोरी
आंसू आइ गये पै न खिलन रुकानी वह ।

शोक के भाव में

भूमि-पात, रुदन क्रंदन, निःश्वास, प्रलाप-विलाप, दुःख प्रकट करना, हाहाकार, भाग्य-निन्दा आदि ।

तड़प तड़प माली अश्रुधारा बहाता,
मलिन मलिनिया का दुःख देखा न जाता ।
निठुर सुख मिला क्या हाय पीड़ा दिये से,
इस नव लतिका की गोद सूनी किये से ?

भय के भाव में

पीछे हटकर भागना, घबड़ाकर सिकुड़ जाना, गिर पड़ना आदि ।

जरा देर में हुई शत्रु सेना शिथिलित सी ।
पीछे वह हट चली युद्ध से हो विचलित सी ।
घबराहट सब ओर पड़ गई उसमें भारी ।
तितर बितर तत्काल वह वहां गई निहारी ।

विस्मय के भाव में

भौंचक्का रहना, आंख फटी रह जाना, दांतों तले अंगुली दबाना या काटना, घबड़ाना और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना ।

सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है कि
सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ?

(२) इहां उहां दुइ बालक देखा । मतिभ्रम मोर कि आन विसेखा ?
देखि राम जननी अकुलानी । (तुलसी० रा० च० मा०)

उत्साह के भाव में

ओजस्वी मुद्रा गर्वोक्ति, साहसिक कार्य आदि ।

मारा झटका तो छिन्न भिन्न हो के शृंखला,
छिटक गई यों मानों ओले पड़े नभ से।
गरजा सरोष महा—बाहु बल विक्रमी,
तोड़ डाला बेड़ियों को खींच पलभर में।

क्रोध के भाव में

लाल मुंह, लाल आंखें, भृकुटी चढ़ना, दांत पीसना ओंठ चबाना, या फड़कना, उग्र प्रहार, गर्जन तर्जन, आक्रमण—आदि।

'माखे लखन कुटिल भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें।
(रा० च० मा०)

शम के भाव में

नश्वर संसार, जीवन, शरीर सुख की भर्त्सना, धिक्कार, करते हुए पावन भाव या भक्ति भाव की अभिव्यक्ति।

(१) पा लिया है सत्य शिव सुन्दर सा पूर्ण लक्ष्य,
इष्ट हम सब को इसी का आनुगत्य है।
सत्य है स्वयं ही शिव, राम सत्य सुन्दर है,
सत्य काम सत्य और राम नाम सत्य है।
(गुप्त : साकेत)

(२) हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गांव न गांव को नौव बिले है,
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न अंग के संग रहे हैं।
केसव काम को राम बिसारत और निकाम ते काम न ऐहैं,
चेत रे चेत अजौं चित अन्तर अन्तक लोक अकेलो ही जैहै।

संचारी भाव या व्यभिचारी भाव

[ACCESSARY EMOTIONS]

"अस्थायी (अस्थिर) और संचरण शील चित्तवृत्तियों या मनोविकारों की संज्ञा 'संचारी भाव' है।"

आश्रय के मन में जाग्रत भाव का अनुमान पाठक या दर्शक को दृश्य मान अनुभाव के द्वारा होता है, परंतु साथ ही आश्रय के मन में स्थायी भाव के आनुषंगिक अनेक भावों का संचार भी होता है।

ये भाव अगणित हैं, परन्तु, उनमें ३३ का निर्धारण किया गया है।

इस संख्या में अभी और भी वृद्धि की जा सकती है।

इन आनुषंगिक भागों के दो लक्षण होते हैं।

(१) पहला लक्षण यह है कि ये भाव क्षणिक अर्थात् अस्थायी होते होते हैं। ये आते हैं और तुरन्त विलीन हो जाते हैं। जैसे जल की लहर आती और चली जाती है वैसे ही ये भाव भी सचरण करते हैं। इसलिए इनका धर्म (विशेषण) 'संचारी' उपयुक्त ही है।

(२) दूसरा लक्षण यह है कि ये भाव किसी एक मूल (या स्थायी) भाव के साथ बंधे हुए नहीं होते। एक ही स्थायी भाव के साथ कोई या कई भाव आ सकते हैं। अथवा यह कहें कि ये विशेष रूप से और विभिन्न भागों के साथ आते जाते रहते हैं। इसलिए इन्हें व्यभिचारी भी कहा जाता है।

वास्तव में संचारी भाव का धर्म है स्थायी भाव की सहायता करना और उस भाव को पुष्ट करते हुए रस की प्रतीति कराना।

संचारी (व्यभिचारी) भावों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

वतन्त्र विषय युक्तभाव	मन के वेग (भाव के कारण उत्पन्न)	अन्य अन्तः करण वृत्तियां (रागातिक नहीं)	मानसिक दशा	शारीरिक दशा
असूया	अमर्ष अवहित्था	(आशा)	अलसता, असंतोष	अपस्मार
गर्व	आवेग औत्सुक्य	चिन्ता, (नैराश्य)	उग्रता	निद्रा
लज्जा	त्रास, विषाद	मति, वितर्क,	उन्माद, ग्लानि	मरण
	हर्ष	शंका	चपलता	विबोध
		स्मृति	जड़ता दैन्य	व्याधि
		(विस्मृति)	धैर्य, निर्वेद	श्रम
			मद, (मृदुलता)	
			मोह, संतोष	
			स्वप्न	

जो भाव कोष्ठक में दिये गये हैं वे आचार्यों के द्वारा स्वीकृत नहीं हैं ; परन्तु उनकी सद्रत्ता में संदेह नहीं।

यह द्रष्टव्य है कि भाव-चित्रण में संचारी भावों की व्यञ्जना मात्र ही हो सकती है। चिन्ता, ग्लानि जैसे शब्दों के द्वारा इनका स्पष्ट कथन किया जाना 'स्वशब्दवाच्यदोष' होता है। इसलिए इन्हें परिस्थिति, मानसिक शारीरिक दशा और व्यापार से ही जानना और पहिचानना पड़ता।

संचारी (व्यभिचारी) भावों का परिचय

संचारी (व्यभिचारी) भावों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

(१) निर्वेद

तत्त्वज्ञान विपत्ति–पराभव–जनित भाव 'निर्वेद'।
अश्रु पात उच्छ्वास, विकर्षण, अवसादन औ खेद।

दार्शनिक ज्ञान के फलस्वरूप या अभीष्ट वस्तु के अभाव से आई हुई विपत्ति और पराजय आदि के कारण आत्मग्लानि को 'निर्वेद' कहा जाता है। [तत्त्वज्ञान के कारण उत्पन्न निर्वेद (वैराग्य) 'शान्त' का स्थायी भाव शम है।] अन्यथा वह सचारी कहलाता है। इसमें अश्रु पात, उच्छ्वास, खेद और विवर्णता की चेष्टायें प्रकट होती हैं।

उस श्री के अभाव में इतना बड़ा राज निर्धन मेरा !
युग युग सा दुर्भर लगता है जीवन का क्षण क्षण मेरा !
उसके बिना बना वसुधा का वैभव सूखा–सूखा सा !
और सल्तनत का सुख सारा लगता रूखा–रूखा सा !

—जौहर (सुधीन्द्र)

(२) ग्लानि Debility.

आधि व्याधि रति दुःख क्षोभ से, मनोशिथिलता ग्लानि।
दुर्बलता कम्पन अवसादन खेद, ओज की हानि॥

आधि (मानसिक विपत्ति) और व्याधि (शारीरिक कष्ट,) रति-श्रम दुःख, क्षोभ आदि के फलस्वरूप अनुत्सा और मनोशिथिलता इत्यादि को 'ग्लानि' कहा जाता है।

निष्प्राणता, दुर्बलता, कम्पन, विकर्षण, खेद, अवसादन इसकी चेष्टायें हैं।

(१) आवेगों से विपुल विकल शीर्णकाया कृशांगी,
चिन्ता–दग्धा व्यथित–हृदया शुष्क–ओष्ठा, अधीरा।
आसीना थी निकट पति के अम्बुनेत्रा यशोदा,
खिन्ना-दीना, विनत–वदना, मोहमग्ना, मलीना।
—प्रियप्रवास (हरिऔध)

(२) शक्तिमान, समृद्ध, सुखी यों शाहन्शाह अलाउद्दीन
एक पद्मिनी बिना बना था मन में निर्बल, दीन, मलीन।
जौहर (सुधीन्द्र)

(३) मद INTOXICATION

मद्य प्रीति मद से उन्मादन 'मद' मिश्रित-आनन्द।
शयन हास गायन रोदन अपवाद जल्प, आक्रन्द॥

मद्य (मदिरा) आदि मादक पदार्थ के उपयोग से उत्पन्न या प्रेम की उमंग या अभिमान के कारण आनन्द-मिश्रित उन्माद की चित्तवृत्ति 'मद' है।

श्रेष्ठ पुरुषों का सोना, मध्यम पुरुषों का हंसना-गाना, और अधम पुरुषों का रोना और बकना या कटूक्ति कहना इसकी चेष्टायें हैं। मद्पी व्यक्ति के मुंह से शब्दों का एक-एक कर या टूट-टूट कर निकलना भी इसका लक्षण है।

किसकी छवि-मदिरा पी पी ये आखें झिपती आती हैं!
जिधर देखती उधर पलक में रूप अलौकिक पाती हैं!
'तेरी--है--ऐसी--छाया—क्या? ते--री--है—ऐ—सी-छा-या!'
कहती गिरी रत्न के तन पर खिलजी की उन्मद काया!
जौहर (सुधीन्द्र)

(४) मोह DISTRACTION

भीति प्रीति से चित्त विकृति विच्छिप्त भाव है 'मोह'।
मूर्छा देहपात स्तम्भन संमोहन का सन्दोह॥

दुःख, भय आदि के आवेग से चित्त की विच्छिप्तता 'मोह' कहलाती है। इसमें वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं रहता। मूर्च्छा, अज्ञान, शरीर-पतन,

चक्र राहट, दिखाई न देना आदि चेष्टाएं इसकी व्यञ्जक हैं।

मोहो विचिन्तता मीत दुःखावेगानुचिन्तनैः।
मूर्च्छना ज्ञान पतनभ्रमणा दर्शनादिकृत ॥—चा. ह

(१) क्या करूं कैसे करूं सब कुछ हुआ विपरीत जीवन !
कूप पर जाती कलश ले नीर लेने हेतु जब मैं,
पैर ले जाते उन्हें अनजान में यमुना--नदी--तट।

—'राधा' (उदयशंकर भट्ट)

(२) पल भर को नृप की पलकों के तारे धूमिल हुए मिचे।
पुतली की लघु चित्र पटी पर भीषण चित्र विराट खिंचे ॥

—'जौहर' (सुधीन्द्र)

(५) विषाद DESPONDENCY

कुकृत पराभव असफलता से आशाहानि 'विषाद'।
मन सन्ताप सहायान्वेषण निःश्वासी अवसाद ॥

पराजय, इष्टकार्य की विफलता या गुरुजनों के प्रति अपराध से उत्पन्न अनुताप 'विषाद' कहलाता है। इसमें पुरुषार्थ या उत्साह भंग हो जाता है कर्त्तव्यशून्यता आ जाती है। और मनोवेदना, निःश्वास, उच्छ्वास, परिताप सहायता का अन्वेषण आदि व्यापार व्यंजित होते हैं।

[उपायाभावजभा तु विषादः सत्त्वसंक्षयः
निश्वासोच्छ्वास हृत्ताप सहायाचेषणादिकृत्।—सा. द.]

पाया तुमने तरु तले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु तड़प-तड़प कर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा ! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा !
अब कौन अभीप्सित और आर्य वह किसका ?
संसार नष्ट है, भ्रष्ट हुआ घर जिसका !

—'साकेत' (गुप्त)

(६) शङ्का APPREHENSION

आत्मदोष परदोष जन्य निज अनिष्ट-'शंका'भाव ।
कम्प भँगस्वर स्तम्भ विरसता, शून्यदृष्टि अनुभाव ।

दूसरे की क्रूरता--अथवा अपने ही दोष से उत्पन्न हुए अनिष्ट की सम्भावना करना 'शंका' कही जाती है ।

इसमें कहीं ऐसा न हो जाये ? न जाने क्या अशुभ होने वाला है ? आदि कल्पनायें मन में उठती हैं । 'भय लेश युक्त ऊहा' इसे कहा जा सकता है ।

मुँह की विवर्णता, कम्प, स्वरभंग, चकित नयन और मुख--शुष्कता इसके लक्षण हैं ।

[परक्रौर्यात्मदोषाद्यैः शंकानर्थस्यतर्कणम् ।
वैवर्ण्य कम्य वैस्वर्य पार्श्वालोका स्वशोषकृत– । साo दo]

(१) स्वर्ण--महल से यह मेरा मुख,
आज न कहीं विवर्ण बने !
सपने ही रह जायं न मेरे,
मन के वे स्वर्णिम सपने !

—जौहर (सुधीन्द्र)

(२) यशोदा बार बार यों भाखै ।
है कोई ब्रज में हितू हमारो, चलत गोपालहिं राखै ।
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधु पुरी बुलायो ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयो । (सूर)

(६) चौंकि चौंकि चकता चहूंधा ते यारो !
लेते रहौ खबरि कहां लौं सिवराज है ? —(भूषण)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इस भाव का विलोम 'आशा' है । यह हर्ष लेश युक्त ऊहा होगी । इसी प्रकार विषाद लेश युक्त ऊहा निराशा होगी ।

(७) आलस्य (अलसता) INDOLENCE

शारीरिक व्याधि, अतिजागरण, श्रम, गर्भावस्था आदि से उत्पन्न हुई निष्क्रियता 'अलसता' या आलस्य' कही जाती है। इसमें शारीरिक या मानसिक क्रिया से विरति होती है।

निश्चेष्टता, अँगड़ाई, शिथिलता, जृम्भा, अरुचि इसके व्यञ्जक लक्षण हैं।

आलस्यं श्रमगर्भाद्यैर्जाड्यं जृम्भाभिलाषादिकृत —सा. द.

नीठि नीठि उठि बैठिहूँ प्यो प्यारी परभात,
दोऊ नींद भरे खरै गरैं लागि गिरि जात। —बिहारी

(८) धृति या (धैर्य)

धृति श्री विजय लोभ दर्शन से चित स्थिरता संतोष,
तृप्ति गहन गम्भीर सुनिश्चय मुदमय वच गतरोष।

अविचलितचिन्तता ही 'धृति' कहलाती है। तत्त्वज्ञान से या इष्ट की प्राप्ति के संतोष से यह उत्पन्न होती है। इससे मन की इच्छा, मोह भय आदि आपत्तियों का निवारण हो जाता है तथा चित्त की चंचलता-चपलता दूर हो जाती है।

तृप्ति सुनिश्चय, उल्लासपूर्ण वचन हर्ष, आदि इसके लक्षक व्यापार हैं।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में—बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित होने पर भी अपने व्यवसाय में अविचलित रखनेवाली मानसिक अवस्था का नाम 'धैर्य' है इसका विलोम 'अधैर्य' होगा।

(१) प्रिय रहा तुम्हें यह दया धृष्ट लक्षण तो,
कर लेंगी प्रभु-पादुका राज्यरक्षण तो।
तो जैसी आज्ञा, आर्य सुखी हों वन में,
बूझेगा दुख से दास उदास भवन में।
बस मिलें पादुका मुझे उन्हें लेजाऊँ,
बस उनके बल पर अवधि-पार मैं पाऊँ।

—'साकेत' (गुप्त)

रे मन साहसी साहस राख सुसाहस से सब जेर करैंगे।
ज्यों पद्माकर या सुख में दुख त्यों दुख से सुख सेर करैंगे।
(२) वैसे ही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारहु टेर करैंगे।
एक दिनानहिं एक दिना कबहूं फिर वे दिन फेर करैंगे।

—'पद्माकर'

(६) मति (RESOLVE)

सदसद्शुद्ध विवेक प्रभा से चेतनता 'मति' ज्ञान।
शंका निराकरण धीरज संतोष ओज मुसकान।

उचित—अनुचित, सद्-असद् का विवेक (ज्ञान) ही 'मति' है। नीति-मार्ग के अनुसरण द्वारा, शास्त्र-विचार और सत्संग द्वारा यह उत्पन्न होती है। इसमें मुस्कान धीरज, संतोष, शंका-निवृत्ति आदि चेष्टायें होती हैं।

नीति मार्गानुसृत्यादेरर्थ निर्धारिणं मति :।
स्थेरता धृति सन्तोषौ बहुमानश्च तद्भवा :। —सा० द०

उज्ज्वल था अतीत यदि अपना
वर्तमान धूमिल आया,
अन्धकार में ढको न अपने
उज्ज्वल भावी की छाया।
कल का मधु मादक उत्सव यदि
तिक्त हलाहल आज बना,
उसे सुधा करके पीना है
शंकर-सा व्रत ले अपना।

'जौहर' (सुधीन्द्र)

(२) सिद्धिमार्ग की बाधा नारी, फिर उसकी क्या गति है?
पर उनसे पूछूँ क्या जिनको मुझसे आज विरति है?
अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है,
मैं भी नहीं अनाथ जगत में मेरा भी प्रभु पति है?
यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय भारी?-साकेत (गुप्त)

इसके मूल में अभीष्ट कार्य की त्वरित सिद्धि की कामना है।

(१०) उत्सुकता या औत्सुक्य

'उत्सुकता' निज इष्ट लाभ में अति अधीरता भास,
चित्त-ताप आतुर आकुलता अस्थिरमन, निःश्वास।

अभीष्ट की प्राप्ति में विलम्ब को न सह सकना अर्थात् अधीरता ही 'उत्सुकता' है।

आतुरता, आकुलता, दीर्घ निःश्वास, विलंब न सह सकना आदि इसके लक्षण हैं।

इष्टानवाप्तेरौत्सक्यं कालक्षेपासहिष्णुता।
चित्तातत्वरास्वेद दीर्घनिःश्वसितादिकृत्॥ —सा० द०

(१) देखन मिस विहग तरु फिरइ बहोरि-बहोरि।

(२) धीरे-धीरे सरके कुछ क्षण बन चुका जब एक घड़ी,
युग-युग बनी दुरन्त हो उठी प्रेम मिलन की अवधि बड़ी।
रह न सका अब, सह न सका वह रत्न-पद्मिनी का मिलना
बस बरबस जा घुसा शिविर में सिंह-गुहा में हरिण बना।
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

(११) असूया ENVY

पर श्री विजय विकलता भाव 'असूया' ईर्ष्यावानाम।
प्रतिद्वन्द्वी की तीव्र अवज्ञा तिरस्कार उद्दाम।

'असूया' ईर्ष्या का भाव है। दूसरे का वैभव, विद्या आदि का उत्कर्ष न देख सकने से यह उत्पन्न होता है। दूर की निन्दा, उसके गुण, समृद्धि -वृद्धि का तिरस्कार, अवज्ञा, रोष आदि इसके व्यापार हैं।

असूया,यगुणधीनामौद्धत्यादसहिष्णुता,
दोषोद्घोषभ्रूवि भेदावज्ञाक्रोधेङ्गितादिकृत्। —सा. द.

१—ओ गर्वीले रत्न रतनसी,
पा रानी पद्मिनी समान,
मुख से सोता देख तुम्हें क्या
मुख से सो सकता सुलतान?—'जौहर' (सुधीन्द्र)

जीवन मुंह चाही को नीको।
(२) दरस परस दिन राति करति है
कान्ह पियारे पी को॥

—सूरदास

(१२) उन्माद DERANGENMENT

काम शोक भय क्रोध व्याधि से चित्तभ्रम उन्माद,
रोदनहास प्रलाप जल्पना, भ्रम, अनुचित अपवाद।

चित्त विभ्रम का नाम उन्माद है।

काम, शोक, भय, क्रोध, आदि की प्रबलता से यह उत्पन्न होता है। अप्रासंगिक हास्य, रुदन, गायन, प्रलाप इसके लक्षण हैं।

(१) शिरा में स्पन्दन आया, उन उन्माद उमंगों से।
अङ्ग-अंग उसका आकुल था व्यथित अनेक अनंगों से।
पग--पग पर उल्लास तरंग, लहर रही थीं अंगों से।
अन्तर का आकाश रंगा था इन्द्रधनुष के रङ्गों से।

—जौहर (सुधीन्द्र)

(२) एक तुम्हारे लिए पद्मिनी, भिक्षु रहा मैं जीवन भर।
आओ हे सम्राज्ञि, न रूठो अब मत बरपा करो क़हर।
लिपट गईं उन मणिस्तम्भों से आह, भुजायें वे फैली,
मदिरा के तो साथ सदा हैं—भाव बुरे, चिन्ता फैली।

—जौहर (सुधीन्द्र)

(१३) स्वप्न

निद्रावतावत मनोदशा से तन्द्र स्वप्न अनुभूति।
सुख दुख-रतिमय ग्लानि भ्रमितता रोषावेश प्रभूति।

—जाग्रत अवस्था में भी निद्रा-मग्न व्यक्ति की भी अवस्था का अनुभव 'स्वप्न' है—इसीलिए इसे 'सुप्त' भी कहा जाता है।

सुख-दुःख, भय, ग्लानि कोप, आवेश आदि सुभाव इसके लक्षण हैं।

स्वप्नो निद्रामुपेतस्य विषयानुभवस्तु यः
कोपावेग भयग्लानि सुखदुःखादि कारकः।

(१) आज दुखी जीवन के मेरे अन्तर्धान अभाव हुए,
और सभी बिगड़ी बातों के पूरे आज बनाव हुए,
इन्हीं पुतलियों से देखूंगा, स्वर्ग उतरता मैं भू पर।
हंसी उड़ाने को जन्नत की देखूँगा फिर मैं ऊपर।
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

(२) खुल गये कल्पना के नेत्र महीपाल के
दीख पड़ी वृद्धा पराधीना वंदिनी—
आर्यभूमि रक्त बहता है अंग अंग से। —'आर्यावर्त' (वियोगी)

(१४) श्रम WEARINESS

अंग की शिथिलता का नाम 'श्रम' है,
तीव्र श्वास निद्रागम इसके व्यापार हैं,
"खेदो रत्यध्वगत्यादेःश्वास निद्रादिकृत्श्रमः"

१. पुर तें निकसी रघुबीर-बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै।
२. **थके नयन** रघुपति छबि देखे, —रा० च० मा० (तुलसीदास)
३. घट बहन से स्कन्ध नत थे और करतल लाल,
उठ रहा था श्वास गति से वक्षदेश विशाल,
श्रवण पुष्प-परिग्रही था स्वेद-सीकर जाल,
एक कर से थी संभाले मुक्त काले बाल,

'ग्लानि' में मानसिक आधि और शारीरिक व्याधि कारण रूप होती है परन्तु 'श्रम' में परिश्रम कारण-रूप होता है,

(१५) त्रास

अहित, विपद्भय जन्य चित्त की अति व्याकुलता त्रास
आशंका वैवर्ण्य पलायन कम्प उच्च उच्छ्वास।

अहित, अनिष्ट, या विपत्ति के भय से उत्पन्न चित्त की व्यग्रता 'त्रास' है। यह किसी शब्द या रूप के गोचर होनेपर एका एक कँपा देने या चौंका देने वाला वेग होता है।

आकुलता, आशका, कम्प इसके लक्षण हैं।

"निर्घात विद्युदुल्काद्यैस्त्रासः कम्पादिकारकः" सा० द०

(१) देखा उसने वहा सामने अन्तक स्वयं समक्ष अड़ा,
थी न वहां पद्मिनी वहा था गोरा सिंह सशस्त्र खड़ा।
जड़ा रह गया मूर्तिवना वह तन जैसे पाषाण बना,
झंझा के झोके में कंपित लघु पल्लव सा प्राण बना।
'जौहर' (सुधीन्द्र)

चढ़ कर जनून सी चलती हूँ मृत्युंजय वीर कुमारों पर
आतंक फैल जाता कानूनी पार्लमेंट सरकारों पर
वीरो के जाते प्राण सूख मेरे कठोर हुंकारों पर
—'विपथगा' (दिनकर)

(१६) विबोध या विमर्ष

निद्रा विरत विशेस बोध चेतनता लाभ 'विबोध'
अंगालोकन नयनोन्मीलन आस्फालन अविरोध।

चेतन्य-लाभ का नाम है विबोध, अविद्या अर्थात् अज्ञान या मोह के दूर होने पर आनेवाली चेतना ही विबोध कहलाती है,
अंगों का अवलोकन, नयनोन्मीलन अंगड़ाई आदि इसके लक्षण हैं।

निद्रापगमहेतुभ्यो विबोधश्चेतनागमः
जृम्माङ्गभङ्गनयनमीलनाङ्गावलोककृत —सा० द०

आचार्य शुक्ल के अनुसार प्रिय की विरह-वेदना से नींद न आना 'विबोध' है।

मुझको छू कर मधु घट छलके !
प्याले मधु पीने को ललके !
मालिक जागा मलकर पलकें
अंगड़ाई लेकर उठ बैठी
चिरसुप्त विमूर्छित मधुशाला !

—'मधुबाला' (बच्चन)

(१७) निद्रा

श्रम क्लम मद मुद जनित चित समीलन 'निद्रा' भाव ,
नेत्र निमीलन अंगभंग, उच्छ्वास आदि अनुभाव ,

प्रिय के ध्यान का सुख अनुभव करते करते सोना या चित्त की बाह्य चेष्टाओं से उदासीनता निद्रा कहलाती है ,

इसमें अंगडाई, जृम्भा (जँभाई) पलक-मीलन उच्छ्वास आदि चेष्टायें होती हैं ।

इस पर भी जागी नहीं चूक क्षमा मांगी नहीं ,
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूंदे रही ,
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये ,
कौन कहे ? —

जुही की कली, (निराला)

(१८) आवेग (FLURRY)

हर्षोत्पात शोक रति रज से संभ्रम ही 'आवेग'
तनसंकोचन स्तम्भ कम्प विगलन व्याकुल उद्वेग ।

चित्त के आकस्मिक आवेश या सम्भ्रम को 'आवेग' कहते हैं । यह इष्ट प्राप्ति से भी होता है और अनिष्ट-प्राप्ति से भी, अर्थात् हर्ष भय आदि इसके कई कारण होते हैं, इसमें आकस्मिक उत्तेजना हो जाती है ।

हर्ष के आवेग में शरीर-संकोच होना, शोक के आवेग में अंगशैथिल्य, कंप, स्तम्भ आदि व्यापार होंगे ।

आवेग संभ्रमस्तत्र हर्षजे पिंडितांगता,
उत्पातजे स्वस्तनांगे धूमा कृष्णाग्निजे। —सा० द०

(१) सुनत श्रवण वारिधि बंधाना, दस मुख बोलि उठा अकुलाना।
बांधे बननिधि, नीर निधि, जलधि सिन्धु बारीश !
सत्य तोयनिधि, कम्पती, उदधि पयोधि नदीश !!
—रामचरितमानस (तुलसी)

(२) मस्तक झुका, पलक को झपका पुतली में प्रार्थना भरे,
अंजलि बने हाथ वे उसने रत्नकोड़ में दौड़ धरे।
और लौट फिर उठा चपक को मुख में उसे उँड़ेल लिया,
शहंशाह ! तुमने यह कैसा इन्द्रजाल सा खेल किया !
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

(१६) दैन्य DEPRESSION

'दैन्य' सुदुर्गति आधि व्याधि से आगत ओजाभाव

ओज का न होना दीनता या 'दैन्य' है। यह दुख, दरिद्रता, विरह, इष्टदेव या पूज्या के महत्व की प्रतीत आदि के कारण होता है।

चित्त की मलिनता, खिन्नता इसके लक्षण हैं।

'दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्य मलिनतादिकृत्।' —सा० द०

(१) अति मलीन बृषभानु कुमारी।
इक टक रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे निहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
(सूरदास)

(२) राम सों बड़ो है कौन ? मो सों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन ? मो सो कौन खोटो ?
—'विनयपत्रिका'

(३) खिन्ना दीना परम मलिना उन्मना राधिका थीं।
—'प्रियप्रवास'

(२०) अवहित्था

भाव–गोपन को अवहित्था कहा जाता है। यह भय, लज्जा गौरव आदि से उत्पन्न हर्ष–आदि मनोभाव को चतुरता से छिपाने में होता है।

अनभीष्ट की ओर प्रवृत्ति होना, बात पर ध्यान न देना, दूसरी ओर देखने लगना आदि इसके व्यापार हैं।

कवि देव ने जो एक पृथक संचारी 'छल' मान है, वह इसी में अन्तर्भूत हो जाता है।

भयगौरव लज्जादेहर्षाद्याकार गुप्तिर वहित्था,
व्यापारान्तरसक्त्यनावभाषण विलोकनादिकरी। सा० द०

(१) देखन मिस मृग-विहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि,
निरखि निरखि रघुबीर छवि बाढ़ी प्रीति न थोरि।

(२) जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखौ पिय छाँह घरीक है ठाढ़े,
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानिके बैठि बिलम्बलौं काटक काढ़े,
जानकि नाह को नेह लख्यो (पुलक्यो तनु बारि बिलोचन बाढ़े।)
कवितावली (तुलसी)

(२१) वितर्क

संशय से उत्पन्न चित्त का चंचल भाव 'वितर्क'
भृकुटिभंग अंगुलि निर्देशन शिरचालन सम्पर्क।

सदेह से उत्पन्न ऊहापोह (विचारणा) 'वितर्क' कहलाती है। आशंका से उत्पन्न होते ही हमारी बुद्धि कुछ सोच विचार में पड़ जाती है।

यह एक प्रकार की किंकर्त्तव्य विमूढ़ता है, भ्रू-भंग; शिर चालन और अंगुलि नर्तन इसके व्यापार हैं।

तर्को विचारःसन्देहाद्भ्रूशिरोंगुलिनर्तकः। —सा० द०

(१) दुख का जग हूँ या सुख की पल,
करुणा का धन या मरु निर्जल।

जीव न क्या मिला कहाँ — सुधि भूली आज समूल।

—महादेवी

(२) कारन कवन नाथ नहिं आये,
जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसराये। (तुलसी)

(३) जौ हौं कहौं रहिए तौ प्रभुता प्रकट होति ?
चलन कहौं तो हित-हानि नाहिं सहनै।

—कविप्रिया (केशव)

आचार्य शुक्ल के मत में 'वितर्क' और "शंका" में भेद यह है कि 'वितर्क' में अनुमान का व्यभिचार इष्ट और अनिष्ट पक्षों में बारी-बारी से हो सकता है, पर "शंका" में 'भय' के लेश के कारण अनुमान अनिष्ट पक्ष में ही 'भय' करता है।' (रसमीमांसा)

(२२) व्रीड़ा (Shame)

'व्रीड़ा' हीन-आचरण, रति से जनित दृढ़त्व-अभाव,
वदन-नमन, तन का संकोचन, गोपन और दुराव।

स्त्रियों की पुरुषों के आगे आनेवाली लज्जा, तथा पुरुषों की प्रतिज्ञा-भंग पराजय आदि से उत्पन्न दृढ़ता का अभाव 'व्रीड़ा' है।

मानस-संकोच, विवर्णता, अधोमुखता इसकी चेष्टायें हैं। 'साहित्य-दर्पण' कार ने केवल दुराचार-व्यवहार को इसका कारण माना है—धाष्ट्याभावो व्रीड़ा वदनानमनादिकृद्दुराचारात्॥ —सा० द०

उदाहरण

(१) बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी,
पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि,
निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि।

(रा० च० मा०)

(२) सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानि है जानकी जान भली,
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाय कछू मुसकाय चली।

(कवितावली)

(३) नतमस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन रस कन हरते,
ऐ लाज भरे सौन्दर्य, बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?
—'चन्द्रगुप्त' ('प्रसाद')

(२३) चापल्य (चपलता) (Unsteadiness)

मत्सर रागद्वेषजनित अनवस्था ही 'चापल्य'
परुष वचन भर्त्सना निरादर उच्छृंखल चांचल्य ।

अनुराग, द्वेष, हास्य, ईर्ष्यादि से उत्पन्न मन की अस्थिरता 'चपलता' कहलाती है ।

दूसरे की भर्त्सना, कठोर वाणी, उच्छृंखल आचरण इसकी चेष्टायें हैं । ईर्ष्या में उग्रता आने से 'उग्रता' का भाव हो जाता है । इसीमें

मात्सर्य द्वेषरागादेश्चापल्य त्वनवस्थितिः
तत्र भर्त्सन-पारुष्य स्वच्छन्दाचरणादयः—

(सा. द.)

उदाहरण

(१) चितवत चकित चहूं दिसि सीता ।
कहँ गये नृप किसोर मन चीता ॥ (रा. च. मा.)

(२) वह साँकरी कुंज की खोरी अचानक राधिका माधव भेंट भई ॥
मुसक्यानि भली अँचरा की अली त्रिबली की बली पर डीठि गई ।
झहराय झुकात रिसाय ममारख बांमुरिया हँसि छीनि लई
भृकुटी मटकाय गुपाल के गाल में आंगुरी ग्वालि गड़ाय गई ।

(काव्य-प्रभाकर)

(२४) गर्व (Arrogance)

धन मद विद्या श्री अभाव से अहम्भाव ही 'गर्व,'
विभ्रम सहित अङ्ग-दर्शन अविनीत अवज्ञा सर्व ।

रूप, शोभा, ऐश्वर्य, विद्या, बल, वीरता, कुलीनता आदि की भावना से अहंकार, अभिमान या मद 'गर्व' कहलाता है।

इसमें उत्साह होने से वीर रस की व्यञ्जना होती है।

दूसरे की उपेक्षा, अवज्ञा, अविनय आदि इसके व्यापार हैं।

गर्वो मदः प्रभाव श्रीविद्या सत्कुलतादिजः,
अवज्ञा सविलासांगदर्शनाविनयादिकृता। (सा. द.)

उदाहरण

(१) स्वाभिमान की अमर ज्योति मैं, तू तम-सा बन कर आया।
छू न सकेगी मुझ को तेरी तमसामय कलुषित काया!
मैं वह उषा कि जो जग में है जागरूकता की जननी,
उसे छुएगी तारक-कर से क्या तेरी सेना-रजनी?

—'जौहर' (सुधीन्द्र)'

(२) मेरे तप का तीव्र तेज है बढ़ रहा—
रवि-मण्डल को भेद ब्रह्म के शीर्ष तक।
फैला है आतंक जगत-परमाणु में,
मिटा रहा हूँ सतत लिखावट भाग्य की।

—'विश्वामित्र' (उदयशंकर भट्ट)

(२५) जड़ता (Stupifaction)

'जड़ता' इष्टानिष्ट ज्ञान से किंकर्त्तव्यविभाव,
अपलक नयन, मौन मुद्रा ही हैं इसके अनुभाव।

इष्टानिष्ट के दर्शन, श्रवण आदि से उत्पन्न विवेकशून्यताअ थवा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता को 'जड़ता' कहते हैं।

अपलक दृष्टि, मूकता आदि इसके लक्षण हैं। "अंतःकरण की बोधात्मक क्रिया का निश्चेष्ट होना ही 'जड़ता' है। एक दम एक हो जाना जिसमें मनुष्य की शारीरिक-मानसिक क्रियाएँ एक क्षण के लिए बन्द-सी हो जाती हैं।"

(१) चित्रित से हो हो एक ध्यान,
विस्मृति विमुग्ध जनकुल महान्।

ऐसा प्रसंग का था विधान,
चैतन्य बना सबका नवीन। कुणाल (सोहनलाल द्विवेदी)

(२) जड़ा रह गया मूर्ति बना वह, तन जैसे पाषाण बना ।।
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

'मोह' में चित्त की व्याकुलता अपेक्षित होती है। 'मोह' सुखावेग से होता है, 'जड़ता' दुखावेग से भी हो सकती है; 'स्तम्भ' में शरीर का गतिरोध होता है परन्तु 'जड़ता' में किंकर्तव्यविमूढ़ता होती है, व्याकुलता नहीं।

(२६) उग्रता (Sternness)

प्रचण्डता का नाम 'उग्रता' है। यह रोष, अपराध-अपमान आदि के ज्ञान से उत्पन्न होती है। प्रायः यह रौद्र रस की पुष्टि करती है।

स्वेद, शिरःकम्पन, तर्जन, ताड़न आदि इसके व्यापार हैं।

शौर्यापराधादिभवं भवेच्चण्ड त्वमुग्रता ।
तत्र स्वेद शिरः कम्प तर्जना ताडनादयः । सा० द०

उदाहरण

मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात किस रोज किधर से आऊँगी।
मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध अम्बर में आग लगाऊँगी।
आये अपनी कर बन्द देश में जब भूकम्प मचाऊँगी।
किसका टूटेगा शृंग, न जाने किसका महल गिराऊँगी?
—विपथगा (दिनकर)

[आचार्य शुक्ल ने इसके विरोधी सञ्चारी को 'मृदुलता' (कोमलता) कहकर एक नया सञ्चारी जोड़ा है।]

(७) अमर्ष (Impatience of Opposition)

अति अपमान व्यंग निन्दा से चित्त-निवेश 'अमर्ष'।

निन्दा, अपमान, आक्षेप, आदि के असहन से उत्पन्न चित्त का क्षणिक क्षोभ (रोष) 'अमर्ष' है।

भ्रूभंग, नेत्रराग, शिर कम्पन, तर्जन इसके लक्षण हैं।

निन्दा क्षेपापमानादेरमर्षोऽभिनिविष्टता ।
नेत्रराग शिरः कम्प भ्रूभंगो तर्जनादिकृत् । [सा० द०]

उदाहरण

उबल उठा शोणित अंगों का
पुतली में उतरी लाली ।
काली बनी स्वयम् वह बाला,
अलक-अलक विषधर व्याली ।—जौहर (सुधीन्द्र)

(२८) चिन्ता Painful recollection

'चिन्ता' हित-प्रिय के अलाभ से जनित चलित जो ध्यान,
शून्य दृष्टि, निःश्वास, ताप, शून्यता, खेद-आह्वान ।

इष्ट की अप्राप्ति के कारण उत्पन्न चंचल चित्तवृत्ति को 'चिन्ता' कहा जाता है ।

शून्यता, निश्वास, ताप, विवर्णता, भूलेखन, अधोमुखता आदि इसकी चेष्टायें हैं।

ध्यानं चिन्ता हितानाप्तेः शून्यतानिश्वासतापकृत् । —सा० द०

उदाहरण—

(१) नरभक्षी वह अनल समर का
कब प्रशान्त होगा भगवन् ?
कब यह विश्व शांति-छाया में
स्नेह-स्नात होगा मधुवन ?
क्षय होगी कब यह जय-लिप्सा
शोणित-तृषा मदोन्मद की ?
कब होगी अब भला तिरोहित
छाया शिर से आपद की ! —जौहर (सुधीन्द्र)

(२) जब ते इततें घनश्याम सुजान अचानक ही बल संग सिधारे ।
कर में मुखचन्द धरे सजनी नित सोचति है तू कहा मन मारे ?

दृगन मूँदि भौंहन जुरै कर तिय राखि कपोल।
अवधि बिती आये न प्रिय, सोचत भई अडोल।

(२९) अपस्मार (Dementedness)

अपस्मार अति आवेशों से जनित चित्त विक्षेप भूमिपतन, कम्पन कविता प्रस्वेदन-जड़ता कालक्षेप।

मानसिक दुःख की अधिकता से उत्पन्न चित्त-विक्षेप का भाव 'अपस्मार' कहलाता है।

अकस्मात् पृथ्वी पर गिर पड़ना, कम्प, फेन और पसीना आना आदि इसके लक्षण हैं।

मनःक्षेपस्त्वपस्मारो ग्रहद्यावेशनादिजः।
भूपातकम्प प्रस्वेदफेनलालादिकारकः। (सा० द०)

उदाहरण—

[१] जो तन के पीछे--पीछे थी घूम रही वन--वन छाया,
अब छाया सी लोट रही थी खिलजी की मूर्च्छित काया।
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

[२] जा छिन तें छिन सांवरे रावरे लागे कटाच्छ कछू अनियारे।
त्यों 'पदमाकर' ता छिन तें तिय सों अंग अँग न जात सम्हारे।
है हिय हायल घायल सी घन घूमि गिरी परै प्रेम तिहारे।
नैन गये फिर फेन अहे मुख चैन रह्यो नहिं मैन के मारे।
(पदमाकर)

(३०) मरण (Death?)

शर-प्रहार दुख से प्राणों का विगलन 'मरण' समान।
देहपतन, जड़तनता, मूर्च्छा, श्वासोच्छ्वास विधान॥

वैसे तो 'मरण' का अर्थ मरना है। परन्तु काव्य में मरना रस का उत्पादक नहीं, अमंगल का सूचक होता है। इसलिए चिर-मूर्च्छा या विरह में मरण--पूर्व दशा ही 'मरण' कही जाती है।

श्वासहीनता, शरीर-पतन आदि इसके लक्षण हैं।

'साहित्य- दर्पण' कारने वास्तविक मरण को ही 'मरण' भाव माना है।

शरान्मैमरण जीवत्यागोऽङ्ग पतनादिकृत्।

वस्तुतः मरण मरणपूर्व की या मरणोपम स्थिति है।

(१) पूछत हौ पछितानेहि कहा फिर पाछे ते पावक ही कौ पिलौगे।
काल की हाल में बूड़ति बाल बिलोकि हलाहल ही कौ हिलौगे।
लीजिए ज्याय सुधा मधु प्याय के न्याय नहीं विषगोली गिलौगे
पचनि पंचमिले परपंच में वाहि मिले तुम काहि मिलौगे।
(घनानन्द)

(२) मलयानिल, यह सुना गया है तेरी गति रुकती न कहीं।
प्राण-पखेरू उड़ा साथ ले चल राधा को शीघ्र वहीं।
सब सखियों से कह देना बस सविनय यही वियोग-कथा।
जीवितेश के धाम गई वह सह न अधिक मधु-विरह-व्यथा।

[३१] स्मृति (Recollection)

सदृशज्ञान पूर्वानुभूत का स्मरण विहित 'स्मृति' भाव।
शिर-चालन अंगुलिकानर्तन भ्रू - उन्नयन प्रभाव।

पहले अनुभव किये हुए (अर्थात् देखे, सुने, सोचे, समझे हुए) व्यक्ति वस्तु या पदार्थ आदि का सादृश्यवाले विषय के दर्शन, श्रवण, चिन्तन आदि से उत्पन्न बोध (ज्ञान) 'स्मृति' है।

पुलक, रोमांच, रुदन, हास्य आदि इसके विभिन्न लक्षण-व्यापार हैं।

सदृशज्ञानाच्चिन्ताद्यैर्भ्रू समुन्नयनादिकृत्।
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थ विषयज्ञानमुच्यते। (सा० द०)

उदाहरण—

(१) पुतली में उस पल प्यास जगी उस छवि की,
कानों में उस पल प्यास जगी गानों की।
नयनों ने ज्यों ही उन नयनों में देखा,
खिंच गई वहाँ पर काम-कला की रेखा।

वह क्षण भी क्या था एक स्वर्ग का कण था,
मुधि सी आई जब भूली पहिचानों की।
—'प्रेयस' (सुधीन्द्र)

(२) मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थी घटा छाई थी।
गमक रहा था केतकी का गंध चारों ओर
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी।
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।
—'साकेत' (गुप्त)

(३२) व्याधि (Sickness)

'व्याधि' वियोग-शोक-रुज-पीड़ित मन का अति सन्ताप।
कम्प, शिथिलता, भूमिपतन की इच्छा और प्रलाप॥

रोग, वियोग-शोक आदि से उत्पन्न मन का संताप व्याधि' है। इसमें ज्वर की सी दशा होजाती है।

आकुलता, विकलता, मूर्च्छा, धरती पर लोटना आदि इसके लक्षण-व्यापार हैं।

'साहित्यदर्पण' कार ने ज्वर को व्याधि माना है:—
'व्याधिर्ज्वरादिर्वातान्नैर्भूमीच्छोत्तापनादिकृत'।

(१) जो तन के पीछे पीछे थी घूम रही बन बन छाया।
अब छाया सी लोट रही थी खिलजी की मूर्च्छित काया।
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

(२) औंधाई सीसी सुलखि विरह-जरी बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गो छींटौ छुई न गात। —बिहारी

(३३) हर्ष (Joy)

इष्ट-लाभ से मन का रंजन या प्रसाद है 'हर्ष'।
गद्‌गद कण्ठ, अश्रु प्रमुदित स्वर और पुलक-उत्कर्ष।

इष्ट-प्राप्ति से उत्पन्न चित्त को प्रसाद ही 'हर्ष' है।

उत्फुल्लता, पुलकित स्वर, रोमांच, हास्य, आनन्दाश्रु आदि इसके व्यञ्जक व्यापार हैं।

'हर्षस्त्विष्टावाप्तेर्मनःप्रसादोऽश्रुगद्गदादिकरः'। —सा० द०

(१) आशा की अन्तिम रेखा-सी खिलजी को सन्देश को मिला।
रोम लहलहाया पल्लव-सा कुड्मल सा हृदेश खिला,
लाली सी झलकी पलकों में, ओठों में स्मिति सी हलकी।
रोम-रोम से शहंशाह की मधु-रस की गगरी छलकी!
—'जौहर' (सुधीन्द्र)

(२) कनक थार भरि मंगलहि, कर कमलन लिय मातु।
चली मुदित परिछन करन, पुलक पल्लवित गातु।
—'रामचरितमानस'

(३) मृग-नैनी दृग की फरक उर-उछाह तन फूल।
बिन ही पिय आगम उमँगि पलटन लगी दुकूल।

संचारी भावों में अन्तर

'शंका' और 'भय'—इन दो भावों में अनिष्ट भावना का आधार रहता है; परन्तु जहा 'शंका' में डर की संभावना ही रहती है, निश्चय नहीं, वहा 'भय में पूर्ण निश्चय रहता है।

'शंका' और 'चिन्ता'—'शंका' में भविष्य का कल्पन होता है परन्तु 'चिन्ता' में इसके स्थान पर सन्ताप होता है।

'भय' और 'त्रास'—दोनों में डरना समावेष्ट है, किंतु 'त्रास' में डर आकस्मिक रूप से प्रकट होता है किंतु 'भय' में धीरे धीरे एक में वेग रहता है दूसरे में शिथिलता।

'शोक' और 'विषाद'—'विषाद' क्षणिक और अनिश्चिति-व्यंजक भाव है। इसमें परिस्थितियां प्रबल होकर मनुष्य को म्लान कर देती हैं। परन्तु 'शोक' में स्पष्टतया इष्ट-नाश की प्रतीति होती है।

'श्रम' और 'ग्लानि'—'श्रम' में शारीरिक परिश्रम से किंतु 'ग्लानि' में मानसिक-शारीरिक आधि-व्याधि से अंग-शैथिल्य या अनुत्साह दिखाई देता है।

'क्रोध' और 'अमर्ष'—दोनों में हृदय की तीव्रता और कटुता समाविष्ट है, किन्तु 'क्रोध' का आविर्भाव किसी जघन्य या प्रचण्ड अपराध से होगा, और 'अमर्ष' का केवल निन्दा से। उसमें केवल खीझ का भाव है।

'क्रोध' और 'उग्रता'—संचारी बनकर आने पर जो भाव 'उग्रता' है वही स्थायी बनते ही 'क्रोध' हो जाता है।

'अमर्ष' और 'उग्रता'—'अमर्ष' में निर्दयता का पुट नहीं होता, केवल निन्दा या गर्जन-तर्जन होता है; परन्तु 'उग्रता' में निर्दयता से प्रेरित ताड़न और हनन तक हो सकते हैं।

उक्त ३३ संचारियों में 'अमर्ष' और 'उग्रता' क्रोध नामक बीज भाव के 'त्रास' भय का, 'विषाद' शोक का और 'जड़ता' आश्चर्य भाव का अंग या अवयव हैं। इन संचारियों के बाह्य लक्षण वे ही हैं जो उक्त भावों के अनुभाव हैं :

स्थायी कब संचारी होता है ?

मूल (या स्थायी) भावों में से भी कोई भाव अन्य मूल भाव का संचारी बनकर आ सकता है। शास्त्रकार ने कहा है—

शृंगारवीरयोर्हासो वीरे क्रोधस्तथा मत :॥
शान्ते जुगुप्सा कथिता व्यभिचारितया पुन :॥
["हास भाव शृंगार-वीर में और वीर में क्रोध।
बने जुगुप्सा भाव शान्त में व्यभिचारी अविरोध ,,]

'शृंगार' तथा 'वीर' रस में हास, 'वीर' रस में क्रोध और 'शान्त' रस में 'जुगुप्सा' भाव संचारी बनकर आ सकते हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि मूल भाव का जो 'आलम्बन' हो उससे भिन्न आलम्बन वाला भाव उसका संचारी कभी नहीं बन सकता। उदाहरण

के लिए 'वीर' रस में 'उत्साह' जिसके प्रति है, 'क्रोध' उसी के प्रति होगा तभी वह संचारी होगा। शस्त्र-संचालन से उत्साह की प्रतीति होती है, साथ ही विपक्षी के नाश की इच्छा से 'क्रोध' की।

इसी प्रकार 'हास' और 'आश्चर्य' को लीजिए। नायक-नायिका के प्रेम भाव में यदि वे एक दूसरे को देखकर हँसें अथवा एक दूसरे का असाधारण सौन्दर्य देखकर विस्मय करें तो 'रति' (प्रेम) में कोई बाधा नहीं आयेगी परन्तु, यदि वे किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु पर हँसने लगें तथा किसी अन्य असाधारण वस्तु पर विस्मय करें तो अवश्य ही विस्मय बाधक होगा।

स्थायी और संचारी का अनुबन्ध

स्थायी भाव व्यक्ति में प्रधान रूप से विद्यमान रहता है, यदि वह अप्रधान या आनुषंगिक ही है, तो वह 'स्थायी' भाव नहीं होगा। 'स्थायी' भाव वस्तुतः भाव की एक अवस्था-विशेष का नाम है। यदि अमुक भाव किसी दूसरे स्थायी भाव का सहयोगी होगा तो वह स्वयं 'स्थायी' पद नहीं पा सकता। उदाहरण-स्वरूप 'रति' भाव जब प्रधान रूप से व्यंजित हो और अन्य भाव जब उसके सहायक के रूप में अभिव्यक्त हों तो वह स्थायी होगा। 'हास' का भाव 'हास्य' रस में प्रधान रूप से अभिव्यक्त होता है अतः स्थायी है; किन्तु हास 'शृंगार' रस में 'रति' का सहायक बनकर सचारी ही रहता है। इसी प्रकार 'शोक' भाव 'करुण' रस में स्थायी भाव है किन्तु विप्रलम्भ शृंगार रस में संचारी है; 'उत्साह' का भाव वीर रस में स्थायी है, परतु 'रौद्र' रस में संचारी है और 'क्रोध' 'रौद्र' रस में तो स्थायी है किन्तु 'वीर' रस में सचारी है।

स्थायी भाव मन की स्थायी मानसिक दशा में परिपुष्ट होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनका आलेखन इस प्रकार किया है—

भाव	स्थायी मानसिक दशा
राग	रति
शोक	सन्ताप
क्रोध	वैर ÷
भय	आशंका
जुगुप्सा	विरति

हास	×
विस्मय	×

आचार्य शुक्ल ने इसके सम्बन्ध में यह भी लिखा है—

"इनमें से रति, वैर और विरति तो पूर्णतया परिस्फुट हैं। उनके अस्तित्व में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। शोक और भय की स्थायी दशाओं के लिए जो शब्द रखे गये हैं, सम्भव है वे ठीक न हों, पर उन दशाओं का अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"

['रसमीमांसा': प्रथम सं०: पृष्ठ १७८]

इन उपर्युक्त स्थायी दशाओं में रति, विरति और वैर अधिक परिस्फुट हैं और मनोविज्ञान के पण्डितों ने भी इनको माना है।

संचारियों का वर्गीकरण

सञ्चारियों का सुख और दुख की सरणि की दृष्टि से वर्गीकरण किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

सुखात्मक Pleasant	दुःखात्मक Unpleasant	उभयात्मक (Common)	उदासीन (Neutral)
आशा, औत्सुक्य,	अपस्मार	आवेग,	निद्रा
गर्व, चपलता	असूया, अलसता,	जड़ता, चित्तचपलता,	मति
धैर्य,	अवहित्था असन्तोष,	दैन्य,	वितर्क
मद, मृदुलता	अमर्ष, उग्रता उन्माद,	विस्मृति,	
सन्तोष,	ग्लानि,	स्वप्न स्मृति,	विबोध
हर्ष	चिन्ता		
	त्रास, नैराश्य		श्रम
	मरण, मोह		
	विषाद, व्याधि		

'सुखात्मक' भावों के लिये सुखात्मक संचारी और दुःखात्मक भावों के लिए दुःखात्मक संचारी परस्पर 'अविरुद्ध' होंगे। इसी प्रकार सुखात्मक भाव के साथ दुःखात्मक संचारी और दुःखात्मक भाव के लिए सुखात्मक संचारी 'विरुद्ध' होंगे।

उभयात्मक संचारी सुखात्मक भी हो सकते हैं और दुःखात्मक भी। जैसे, आवेग 'हर्ष' में भी हो सकता है और 'भय' आदि में भी।

भाव के साथ जो विरोध-अविरोध यहां कहा गया है वह 'जातिगत' है अर्थात् वह सजातीय-विजातीय का विरोध है। इसके अतिरिक्त आश्रयगत और विषयगत विरोध जिस भाव या मनोवेग से होगा वह संचारी हो ही नहीं सकता। जैसे, क्रोध के बीच-बीच में आलम्बन के प्रति यदि शंका, त्रास या दया आदि मनोविकार प्रकट होते हुए कहे जायेंगे तो उससे क्रोध की पुष्टि न होगी। यही बात युद्धोत्साह के बीच में 'त्रास' भाव के होने से होगी।

सारांश यह है कि किसी भाव को पुष्ट करनेवाला मनोविकार वही होगा जो भाव के लक्ष्य और प्रवृत्ति से हटानेवाला न होगा।

स्थायी भाव भी कुछ परस्पर-प्रतिकूल हैं कुछ परस्पर अनु-कूल। उदाहरणार्थ, शोक और हास्य का जन्मजात वैर है परन्तु वीर और रौद्र का नहीं।

स्थायी भावों के पारस्परिक विरोध के ही माने हुए आधार पर यह निर्विवाद है कि निम्नलिखित रसों में मैत्री नहीं हो सकती, वे एक दूसरे के विरोधी ही रहेंगे—

(क) 'हास्य' (हास) (भय) और 'करुण' (शोक)

(ख) 'शृंगार' (रति) और 'वीभत्स' (जुगुप्सा-घृणा)

(ग) 'वीर' (उत्साह) और 'भयानक' (भय)

× पाश्चात्य विद्वानों के मत—

1. We are angry at the open insult and perhaps moved to enduring hatred by the obnoxious and insuperable enemy.—Angel.

2. When anger is deliberate and develops hate —Shand.

इसी प्रकार निम्नलिखित रसों में भी विरोध है—

'शृंगार' का करुण, वीभत्स, भयानक, रौद्र, वीर से
'हास्य' का करुण और भयानक से
'वीर' का 'भयानक' और 'शान्त' से
'रौद्र' का 'भयानक' 'शृंगार' 'हास्य' से
'करुण' का 'शृंगार' और 'हास्य' से
'भयानक' का 'रौद्र', 'वीर', 'शान्त', 'शृंगार', हास्य से
'वीभत्स' का 'शृंगार' से।
'शान्त' का 'भयानक', 'रौद्र', 'वीर', 'शृंगार', 'हास्य', से

रसों का परिचय

रस नौ (९) माने गये हैं—(१) शृंगार (२) वीर (३) रौद्र (४) वीभत्स (५) हास्य (६) अद्भुत (७) करुण (८) भयानक और (९) शान्त । इनमें से 'नाट्यशास्त्र' कार भरत मुनि ने चार प्रधान रस (शृंगार, वीर, वीभत्स, रौद्र) माने हैं और चार (हास्य, अद्भुत, करुण और भयानक) इनके अंग-रूप माने हैं।

सुखात्मक		दुखात्मक	
(रति)	(उत्साह)	(क्रोध)	(जुगुप्सा)
शृंगार	वीर	रौद्र	वीभत्स
(हास्य)	(विस्मय)	(शोक)	(भय)
हास	अद्भुत	करुण	भयानक

'शान्त' को को रस मानने में भरत मुनि को आपत्ति थी; कारण यह है कि इसके स्थायी भाव 'शम' (अथवा निर्वेद) का अभिनय नहीं हो सकता। इसके लिए इंद्रिय-निग्रह, संयम और पूर्ण निश्चेष्टता अपेक्षित हैं। इसमें वर्हिमुख मन को अन्तर्मुख करना पड़ता है। यह 'नट' नहीं कर सकता।

परन्तु यहा भ्रांति है। पहले तो नट भाव का अभिनय रूप में उसकी

अनुभूति करे ही यह अनावश्यक सा है । फिर यदि वह 'निर्वेद' संचारी का अभिनय कर सकता है तो 'निर्वेद' स्थायी का अभिनय क्यों नहीं कर सकता ?

इसलिए इस आपत्ति के होते हुए भी 'शान्त' को रस मान लिया गया है ।

(१)—शृंगार रस

'शृंगार' रसराज कहा गया है ।

संयोग और वियोग (जिन्हें संभोग और विप्रलम्भ भी कहा गया है) इसके दो पक्ष हैं । ये दोनों परस्पर-विरोधी भावों की अनुभूति देते हुए भी प्रेम की ही पुष्टि करते है । सुख-दुःखात्मक भावों के कारण इसमें चार को छोड़ कर शेष सब संचारी आ सकते हैं ।

इसका स्थायी भाव रति है—रतिः मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसःप्रवणायतम् । अर्थात् मन के अनुकूल अर्थ में मनका प्रेमार्द्र या द्रवित होना 'रति' है इस दृष्टि से छोटों के प्रति स्नेह अर्थात् 'वात्सल्य' और 'भक्ति' को भी इसी में अंतर्भूत किया जा सकता है । ऐंद्रिकता से लेकर मन की उच्चतम और पवित्रतम प्रेम-दशा तथा ईश्वरोन्मुख रहस्यवाद की प्रेम-स्थिति भी इसमें आ जाती है ।

स्त्री-पुरुष की प्रीति इसका मान्य अर्थ है । सृष्टि में यही सबसे अधिक और स्थायी तत्त्व है यह दाम्पत्य प्रीति ही 'प्रणय' या 'रति' है—ऐसा माना जाता रहा है ।

विभाव पक्ष

(क) **आलम्बन** 'रति' भाव के आलम्बन है—प्रेमी (नायक या नायिका)

उद्दीपन

रूप-सौन्दर्य, गुण-सौन्दर्य, रम्य वेश-भूषा, शृंगार, तथा विविध चेष्टायें

(जो 'हाव' कही जाती है।) और चन्द्र, चन्द्रिका, शीतल मन्द, सुगन्ध समीर, एकांत उपवन, भ्रमर-गुंजन आदि मनोरम प्राकृतिक वातावरण।

(अनुभाव) (आश्रय की चेष्टाएं)

(क) आश्रय की प्रेमदृष्टि, भ्रूविक्षेप, कोमल, मधुर वाणी आदि विविध आंगिक अनुभाव

(ख) स्तम्भ, पुलक, अश्रु, वैवर्ण्य आदि सभी सात्विक अनुभाव

संचारी (व्यभिचारी) भाव—

उग्रता, (अलसता) जुगुप्सा और मरण के अतिरिक्त सब संचारी भाव-संयोग शृंगार में सुखात्मक और वियोगशृंगार में सुखात्मक।

उदाहरण

संयोग शृँगार

१—चितवत चकित चहूं दिसि सीता।
कहँ गये नृपकिशोर मनचीता॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाये।
श्यामल गौर किसोर सुहाये॥
देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छबि देखे।
पलकन्ह हूं परिहरी निमेषे॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

[रा० च० मानस]

(क) यहां सीता आश्रय और राम 'आलम्बन' हैं। लतामण्डप, उद्यान और राम का मनोरम रूप उद्दीपन हैं।

( ) नेत्रों का ललचाना, अपलक दृष्टि, 'देह भइ भोगी' से व्यक्त होनेवाला स्तम्भ, आदि सात्विक और कायिक अनुभाव हैं।

(ग) 'ललचाने' से व्यक्त होने वाली 'अभिलाषा' तथा 'हरषे' से व्यंजित होने वाला 'हर्ष' 'थके, नयन' से व्यंजित 'श्रम' 'मन सकुचानी' से लक्षित 'व्रीड़ा' संचारी भाव हैं।

इस प्रकार विभावों अनुभावों तथा संचारियों से पुष्ट 'रति' नामक स्थायी भाव 'शृंगार' रस का परिपाक करता है।

(२) मेरे मन के प्रेम भाव के प्राण, तुम्हीं आलम्बन।
जीवन के मधु उपवन में बैठा था मैं एकान्त!
आकर्षण का जाल बिछाया क्यों तुमनें छविकांत।
स्पर्श तुम्हारी वाणी का ले मन्थर मलय-समीर।
करता है अज्ञात कामना से अधीर मन-प्रान्त।
प्राणों में कुछ जाग रहा है यह कैसा उद्दीपन!

शिरा-शिरा में उष्ण रक्त, नयनों में अपलक हाव।
पुतली में मादकता है, ओठों में चुंबन चाव।
अन्तर में उमंग का स्पंदन, रोम-रोम में हास।
होता अपने आप: इसे वे कहते हैं 'अनुभाव'।
देख रही है प्रकृति आज यह कैसा है परिवर्तन!

हुआ कण्ठ में रोध, कहूँ कैसे मन का उल्लास?
आओ, मैं-तुम मिलें-सुनो इन प्राणों का उच्छ्वास।
उर में धड़क, कम्प अंगों में, मन है संज्ञाहीन।
आज हो गया प्राणों में बिजली का क्षणिक विलास।
जग को भी होने दो इसमें 'मधुरस' का आस्वादन! (सुधीन्द्र)

(१) यहां 'मैं' आश्रय और 'तुम' 'आलम्बन' विभाव हैं।यह दोनों प्रेमी हैं।

(२) जीवन का मधु उपवन, एकांत, आकर्षण का जाल, कांत छवि, मधुरवाणी, मलय-समीर, आदि उद्दीपन विभाव है।

'नयनों में अपलक हाव' से व्यंजित
'अन्तर में उमंग का स्पन्दन' से व्यंजित 'कम्प' "रोम रोम में हास"

मे रोमांच' कण्ठ में रोध, 'स्वरभंग' अनुभाव हैं तथा कण्ठरोध, मन का 'उत्सुकता' उल्लास से व्यंजित 'हर्ष आओ मैं तुम मिलें' से व्यंजित मन है संज्ञाहीन, से व्यंजित।

(३) जुही की कली

नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल,
इस पर भी जागी नहीं, चूक-क्षमा मांगी नहीं।
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही,
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये कौन कहे?
निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह
सारी झकझोर डाली
मसल दिये गोरे कपोल गोल..... ('निराला'

(ख) वियोग शृङ्गार

(१) अति मलीन वृषभानु कुमारी।
अधो-मुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारेथकित जुआरी।
छूटे चिहुर वदन कुँभिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि संदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक विरहनि दूजे अलि जारी।

[वृषभानुकुमारी 'आश्रय'; कृष्णवियोगी आलम्बन-वियोग-स्मृति आदि उद्दीपन, अधोमुख रहति, उरध नहिं चितवति, बिखरे बाल, कुम्हलाया वदन आदि अनुभाव और 'दैन्य' 'ग्लानि,' 'मरण' नामक सञ्चारी भाव हैं।]

(२) भूषन वसन विलोकत सिय के।
प्रेम विवस मन, कंप पुलक-तनु।
नीरज नयन नीर भरे पिय के।

सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत।
सील सनेह सुगुन गन निय के।

राम आश्रय, सीता **आलम्बन**, भूषण-वसन उद्दीपन, कम्प, पुलक (रोमांच), अश्रु सात्त्विक अनुभाव हैं, 'सकुचत कहत' से व्रीड़ा, 'सुमिरि' से स्मृति संचारी लक्षित होते हैं।

(२) करुण

इष्ट नाश 'स्वजन' निधन आदि अनिष्ट से उत्पन्न बीज भाव 'शोक', उद्दीपन,-अनुभाव तथा संचारियों द्वारा पुष्ट होकर 'करुण' रस बनता है।

स्थायी भाव

'शोक' जो इष्टनाश या मृत्यु से हो।

आलम्बन

विनष्ट (मृत) प्रियजन, विनष्ट ऐश्वर्य, अथवा पराजय।

उद्दीपन

शव, शव-दर्शन शव- दाह, सम्बद्ध वस्तुओं या बातों का स्मरण, दर्शन आदि।

अनुभाव

रोना-चिल्लाना आह भरना, विधाता और भाग्य की निन्दा करना, पछाड़ खाकर धरती पर लोटना, प्रलाप आदि।

संचारी

ग्लानि, व्याधि निर्वेद मोह स्मृति श्रम विषाद चिन्ता भारा।
जड़ता दैन्योन्माद, दीनता, करुण भाव के संचारी।

उदाहरण

१—फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई।
कुररी सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई॥
बहुविध प्रलाप-विलाप वह करने लगी उस शोक में।
निज प्रिय-वियोग समान दुख होता न कोई लोक में॥

—'जयद्रथ-वध'

अभिमन्यु के निधन पर उत्तरा का शोक यहा स्थायी भाव है। अभिमन्यु

की मृत्यु आलम्बन है, उसकी वीरता, सुन्दरता, प्रेम आदि उद्दीपन हैं और सिर पीटना आंसू बहाना, विलाप करना आदि अनुभाव हैं। दैन्य, आदि संचारी हैं।

२—वह आता—

दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता !
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँहफटी-पुरानी झोली को फैलाता।
साथ दो बच्चे हैं हाथ फैलाये
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य-विधाता से क्या पाते ?
घूँट आसुओं के पीकर रह जाते !

['भिक्षुक'-निराला]

'करुण' और करुण-वियोग शृंगार में अन्तर यह है कि करुण में वियोग सदा के लिए हो जाता है, मिलन की आशा नहीं रहजाती। परन्तु करुण-वियोग में रति का भाव स्थायी रहता है और मिलन की आशा रहती है।

'करुण' में रति का अभाव है, करुणात्मक वियोग में रति का भाव। यदि स्थायीभाव रति है तो वियोग शृंगार होगा और यदि स्थायी भाव शोक है तो करुण रस होगा। 'प्रिय प्रवास' में राधा का और 'साकेत', में उर्मिला का विरह करुणात्मक वियोग ही कहा जायगा।

(३) वीर

'वीर' का स्थायी भाव उत्साह है, यह शत्रु-नाश में, दया दिखाने या कष्ट मिटानेमें, निर्धन को धन-दान देने में, अधर्म को मिटाने और धर्म स्थापित करने आदि विविध विषयों में हो सकता है। अतः इसके कई प्रकार हैं—

(क) युद्ध वीर (ख) दयावीर, (ग) दानवीर (घ) धर्मवीर हरिऔधजी ने 'कर्म वीर भी माना है।

(क) युद्धवीर

आलम्बन

शत्रु

उद्दीपन

शत्रु के कार्यकलाप

अनुभाव

वीर की युद्ध क्रिया और गर्वोक्ति आदि

संचारीभाव

मति, धृति, गर्व, हर्ष, आवेग, औत्सुक्य, असूया आदि।

उदाहरण—

मैं सत्य कहता हूँ सखे। सुकुमार मत जानो मुझे
यमराज से भी युद्ध में प्रस्तुत सदा मानो मुझे
है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं
मामा तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं।

—'जयद्रथ वध'

अभिमन्यु आश्रय, कौरव आलम्बन, अभेद्य चक्रव्यूह उद्दीपन है। अभिमन्यु के उक्त उद्गार अनुभाव हैं। गर्व, औत्सुक्य, हर्ष आदि सचारी भाव हैं।

(ख) दानवीर

आलम्बन

भिक्षुक या याचक या दीन व्यक्ति

उद्दीपन

दान पात्र की दीनता या प्रशंसा

अनुभाव

याचक का आदर-सत्कार, धन लुटाना आदि।

संचारीभाव

गर्व, हर्ष, आवेग आदि

(४) रौद्र रस

स्थायीभाव

क्रोध (अपने से प्रतिकूल विषय में तीक्ष्णता का बोध)।

आलम्बन

शत्रु या वैयक्तिक अथवा सामाजिक अनिष्ट करनेवाला व्यक्ति या वस्तु।

उद्दीपन

आलम्बन की उक्तियां, चेष्टायें, अनिष्ट की प्रतीति, आदि

अनुभाव

दांत पीसना, ओंठ काटना, क्रूरदृष्टि गर्वोक्ति, उग्र शब्द, हथियार चलाना, आक्रमण तथा प्रहार करना

सात्विक—कंप, भृकुटि भंग, स्वेद, लाल मुख होना।

संचारी भाव

उग्रता आवेग, मद, मोह, अमर्ष, गर्व, स्मृति, चपलता आदि।

उदाहरण

१. माखे लखन कुटिल भइ भौं हैं।
रदपुट फरकत नयन रिसौं हैं।
रघुवंशिन महँ जहँ कोउ होई।
तेहि समाज अस कहै न कोई।

(रामचरितमानस)

यहां लक्ष्मण आश्रय का परशुराम पर आलम्बन क्रोध स्थायीभाव है। परशुराम के उग्र वचन उद्दीपन हैं। भौंहें टेढ़ी होना, ओंठ फड़कना, आंख लाल होना उग्र वचन कहना अनुभाव है।

(१) उबल उठा शोणित अङ्गों का,
पुतली में उतरी लाली
काली बनी स्वयम वह बाला
अलक-अलक विषधर काली

बढ़कर तन के रोम रोम में
धधक उठी दृग की ज्वाला।
अङ्गारों में फूट पड़ी यों
उसके रग-रग की ज्वाला—
'पाप शाप! अब तो असह्य है
कुटिल प्रवञ्चन यह तेरा!
मुझे जान पड़ता है मानों
मुझे आज यम ने घेरा॥
अरे, नराधम नहीं जानता
है तामस दुःसह मेरा?
हो जायेगा भस्म कि जिसमें
राज-पाट सब यह तेरा!!

'जौहर' (सुधीन्द्र)

यहाँ पद्मिनी 'आश्रय' अलाउद्दीन आलम्बन है। अलाउद्दीन के प्रति क्रोध' स्थायी भाव है। अलाउद्दीन का पत्र और रानी बनाने का प्रस्ताव उद्दीपन है। रक्त उबलना, लाल पुतली होना, विकराल रूपाकृति होना, बाल बिखरना उग्र उक्तियां आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, आवेग, चपलता आदि सञ्चारी हैं।

(३) उस काल मारे क्रोध के तन काँपने उसका लगा।
मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा।
मुख बाल-रवि सम लाल होकर ज्वाल सा बोधित हुआ।
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ?
दुर्द्धर्ष जलते-से हुए उत्ताप के उत्कर्ष से,
कहने लगे तब वे अग्निमय वचन व्यक्त अमर्ष से,
'सुर नर असुर गन्धर्व किन्नर आदि कोई भी कहीं,
कल शाम तक मुझसे जयद्रथ को बचा सकते नहीं!'

'जयद्रथवध'

यह द्रष्टव्य है कि वीर में 'हर्ष और 'धृति' सञ्चारी होते हैं, परन्तु 'रौद्र' में

विषाद और चापल्य संचारी होते हैं।

(५) वीभत्स रस

स्थायीभाव

जुगुप्सा (घृणा)

आलम्बन

मांस, रक्त, मेद, वमन तथा आधुनिक सामाजिक भूमिका में सामाजिक-नैतिक पाप या दुराचरण

उद्दीपन

दुर्गन्ध, कुरूपता, सड़ांध, आदि तथा नैतिक-सामाजिक पाप का साक्षात्कार तथा स्मरण,

अनुभाव

मुंह फेरना, थू थू, छी-छी करते हुए मुख-नासा-संकोच, मुख और आंखें मोड़ना, धिक्कारना आदि

संचारीभाव

आवेग, व्याधि, अपस्मार, मोह, मरण आदि।

—यह 'रस' ऐसा रस है कि जिसमें केवल 'आलम्बन' के यथोचित वर्णन मात्र से रसानुभूति हो जाती है, प्रायः 'आश्रय' की अपेक्षा नहीं होती।

(१) विविध रंग की उठति ज्वाल, दुर्गन्धनि महकति
कहुँ चरबी सों चटचटाति, कहुँ दह दह दहकति।
कहुँ सृगाल कोउ मृतक अंग पर घात लगावत।
कहुँ कोउ सव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत।
जंह तंह मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ खेत कहुँ कहुँ रतनारे।
लखत भूप यह साज मनहि मन करत गुनावन।
'परयो हाय! आजन्म करन यह कर्म घिनावन।'

—शमशान वर्णन ('रत्नाकर')

विभाव

श्मशान भूमि आलम्बन है; चिता जलना, दुर्गन्ध, चरबी का चट-चटाना, शृगाल का शव को देखना तथा गिद्ध का चोंच चलाना, मज्जा, मांस, रुधिर, हड्डी आदि का दर्शन उद्दीपन विभाव हैं ॥

राजा (हरिश्चन्द्र) की उक्ति 'हाय, आजन्म घृणित कार्य करना पड़ा !' अनुभाव है ।

संचारी

'विषाद' संचारी है ।

(२) मेदा, मज्जा रक्त मांस थे पड़े कहीं, कंकाल कहीं ।

—जौहर (सुधीन्द्र)

(३) (सामाजिक-नैतिक पक्ष में)

मर-मिटकर भी नहीं मनुज को
इस जग में जीना आया ॥
मनुजों का आमिष खाना या
लोहू ही पीना आया

—जौहर (सुधीन्द्र)

(४) देखी तुमहरी कासी, लोगो देखी तुमहारी कासी
आधी कासी भाड़ भँड़रिया बामन औ संन्यासी
आधी कासी रंडी मुंडी रांड खानगी खासी
लोग निकम्मे भंगी भंगड़ लुच्चे बेविस्वासी
महा आलसी झूठे सोहदे बेफिकरे बदमासी
नीचे नल से बदबू उबले मनो नरक चौरासी ।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

(६) हास्य रस

स्थायी भाव

'हास्य' रस का 'स्थायी भाव' हास' है ।

आलम्बन

विकृति (विरूप आकृति वेश, कार्य आदि)

उद्दीपन

विरूप आचरण

अनुभाव

आँखों का खिल जाना, आँखों का खुलना, दाँत दिखाई देना आदि।

संचारी

हर्ष, चापल्य, आलस्य, अवहित्थ आदि।

'हास्य' कई प्रकार का होता है—

(१) स्मित : में आँखें खिल जाती हैं, ओठ थोड़े-थोड़े ही हिलते हैं।

(२) हसित : में थोड़े दाँत दिखाई पड़ते हैं।

(३) विहसित : में थोड़ा थोड़ा मधुर शब्द भी होता है।

(४) अवहसित : में शब्द होने के साथ शरीर भी कुछ हिलने लगता है।

(५) अपहसित : में आँखों में पानी भी आ जाता है।

(६) अतिहसित : में हाथ-पैर पटकना होता है।

इस रस में भी 'वीभत्स' की भाँति केवल आलम्बन का वर्णन या चित्रण करते ही रसानुभूति हो जाती है; आश्रय की अपेक्षा प्रायः इसमें नहीं होती। जैसे इस विरूप काव्य (Parody) में—

एकहि धर्म एक व्रत नेमा।
काम छाँड़ि सब जाहिं मिनेमा।

(गड़बड़ रामायण)

उदाहरण

(१) शैल विशाल महीतल फोड़ बढ़े
तिनको तुम तोड़ कढ़े हो।
लै लुढ़की जलधार धड़ाधड़
ने धर गोल मटोल गढ़े हो।
प्राण-विहीन कलेवर धारि
विराजि रहे न लिखे न पढ़े हो।
हे जड़ब शिला-सुत शंकर
भारत पै कर कोप चढ़े हो।

—नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर'

यहां कवि ने शंकर 'भगवान' को हास्य का आलम्बन बनाया हैं। आश्रय' स्वयं कवि तथा पाठक होंगे।

शंकर-मूर्ति (शिवलिंग) का लुढ़कना, गोल-मटोल गढ़े जाना, प्राण-विहीन कलेवर होना, लिखे-पढ़े न होना तथा शिलासुत होना कहा जाना हास्य का उद्दीपन है। अनुभाव तथा संचारी यहा अव्यक्त ही हैं। ये केवल अनुमानित हैं।

२—विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रत-
धारी महा विनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी
सो कथा सुनि भे मुनि वृंद सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे-
कीन्ही भली रघुनायकजू
करुना करि कानन को पगु धारे !

यहां रामचन्द्र आलम्बन विभाव है, गौतम-नारी का उद्धार उद्दीपन विभाव है ; मुक्ति की कथा सुनकर सुखी होना और 'ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी, आदि सोचना अनुभाव है।

(७) भयानक

भयकारी व्यक्ति या वस्तु के दर्शन या प्रतीति से उत्पन्न भय का बोध भाव विभाव, उद्दीपन, अनुभाव सञ्चारी आदि से पुष्ट होकर "भयानक" रस की अनुभूति कराता है।

स्थायीभाव

इसका स्थायीभाव 'भय' है :

आलम्बन

भयावह वस्तु या व्यक्ति, (सिह, सर्प आदि हिंस्र जन्तु, अग्नि, जल-प्रलय भूकम्प आदि) तथा शत्रु।

उद्दीपन

आलम्बन की भयंकर चेष्टाये जैसे सिंह-गर्जन, आग की लपटें, ऊंची

ऊंची लहरें, निर्घोष आदि आदि ।

अनुभाव

कम्प स्वेद रोमांच और स्वर-भंग पलायन ।
हाहाध्वनि चीत्कार, मूर्च्छा, भौंचक्कापन ।

संचारीभाव

त्रास दैन्य शंका भ्रम चिन्ता, मोह और आवेग मरण
ये सब भय के संचारी हैं करें भयानक रस-व्यंजन ।

उदाहरण

समस्त सर्पों सँग श्याम ज्यों कढ़े,
कलिन्द की नंदिनि के सुअंग से,
खड़े किनारे जितने मनुष्य थे
सभी महाशंकित भीत हो उठे ।
हुए कई मूर्च्छित घोर त्रास से,
कई भगे, मेदिनि में गिरे कई ।
हुई यशोदा अति ही प्रकम्पिता
व्रजेश भी व्यस्त समस्त हो गये ।

—'प्रिय-प्रवास' (हरिऔध)

(८) अद्भुत रस

अलौकिक प्रसंग की प्रतीति से विस्मय बीजभाव पुष्ट होकर 'अद्भुत' रस का आस्वादन कराता है ।

स्थायीभाव

इसका स्थायीभाव 'विस्मय' या आश्चर्य है ।

आलम्बन

अलौकिक व्यक्ति, वस्तु या विचित्र दृश्य

उद्दीपन

आलम्बन की विचित्र चेष्टायें या बातें या गुण-वर्णन ।

अनुभाव

स्तंभ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर, विस्फारित नेत्र, दांतों-तले अंगुली दबाना, दर्जीभ मुंह से निकालना आदि।

संचारी

हर्ष, वितर्क, त्रास, मोहादिक हैं 'अद्भुत' के संचारी।

उदाहरण

(१) अखिल भुवन चर अचर सब
हरि-मुख में लखि मातु।
चकित भई, गद्गद वचन,
विकसित दृग पुलकातु।

श्रीकृष्ण का मुख 'आलम्बन' है और यशोदा 'आश्रय'। बालक कृष्ण के फटे मुख में चराचर विश्व का दर्शन 'उद्दीपन' है। आखों का विकसित होना, गद्गद बचन, रोमांच आदि 'अनुभाव' हैं। त्रास 'संचारी' है।

२. दुर्बन दुसासन दुकूल गह्यो दीनबन्धु,
दीन ह्वै कै द्रुपदकुमारी यों पुकारी है।
छाड़ि पुरुषारथ को ठाड़े पिय पारथ से,
भीम महाभीम ग्रीव नीचे को निहारी है।
अंबर तो अम्बर अमर कियो बंसीधर,
भीषम करन द्रोन सोभा यों निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है कि
सारी ही की नारी है कि सारी है कि नारी है!

द्रौपदी के चीर-हरण की घटना के समय उसके चीर का बढ़ना देखकर भीष्म, कर्ण, द्रोण, आदि के चित्त में विस्मय स्थायी भाव है। चीर आलम्बन है। द्रौपदी चीर-वृद्धि उद्दीपन है। अनुभाव इत्यादि केवल अनुमानित हैं।

(६) शान्त रस

तत्त्वज्ञान, वैराग्य आदि से उत्पन्न 'निर्वेद' या 'शम' बीजभाव आलम्बन उद्दीपन, अनुभाव, संचारी आदि से पुष्ट होकर 'शान्त' रस की अनुभूति कराता है।

स्थायी भाव

इसका स्थायी भाव निर्वेद या शम है।

आलम्बन

अनित्य जगत या शरीर

उद्दीपन

सत्सगति, पवित्र आश्रम या तीर्थ, मृतक-दर्शन, श्मशान, नश्वर संसार या शरीर की प्रतीति, परमात्मा का चिंतन, भजन, भक्ति या उपदेश, तथा ज्ञानप्राप्ति।

अनुभाव

पश्चात्ताप, विषय में अरुचि, शत्रु-मित्र में समभाव, गृहत्याग की आतुरता आदि।

संचारी भाव

हर्षस्मृति-मृति धृति विबोध, मति आदि शान्त के संचारी।

उदाहरण

(१) मन पछितै है अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम, बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन धाम सवारे, अन्त चले उठि रीते॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहिं तजैंगे पामर ! तू न तजै अबही ते॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते॥

यहां भक्त या सामान्य मानव प्राणी आश्रय है, अनित्य संसार आलम्बन है। दुर्लभ देह-प्राप्ति, सहस्रबाहु, दशवदन आदि प्रतापी राजाओं की मृत्यु का कथन तथा सांसारिक संबधों की स्वार्थिता उद्दीपन विभाव हैं। धिक्कारना भर्त्सना आदि अनुभाव हैं और चिन्ता और शंका संचारी भाव हैं।

(२) ओ क्षण-भंगुर भव राम, राम !
मैं भाग रहा हूँ भार देख,
तू मेरी ओर निहार देख !
मैं त्याग चला निस्सार देख !
अटकेगा मेरा कौन काम !
ओ क्षण-भंगुर भव ! राम, राम !

०

प्रच्छन्न रोग है, प्रकट भोग,
संयोग-मात्र भावी वियोग।
हा, लोभ-मोह में लीन लोग
भूले हैं अपना अपरिणाम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम, राम !

सिद्धार्थ का महाभिनिष्क्रमण यहां वर्णित है। सिद्धार्थ 'आश्रय' तथा क्षणभंगुर भव 'आलबन' है। उसकी निस्सारता तथा क्षण भंगुरता की प्रतीति रोग, भोग, लोभ, मोह में लिप्त होना आदि उद्दीपन है। सिद्धार्थ का ऐश्वर्य वैभव छोड़कर चले जाने का निश्चय अनुभाव है।

'भाग रहा हूं भार देख' से व्यंजित 'वितर्क' अटकेगा मेरा कौन काम से व्यंजित 'धृति' प्रच्छन्न रोग है, प्रकट भोग और संयोग मात्र भावी वियोग से व्यंजित 'मति' संचारी हैं।

इस प्रकार विभाव, अनुभाव, संचारीभाव से परिपुष्ट 'निर्वेद' बीजभाव से शांत रस की अनुभूति हुई-है।

कुछ और 'रस'

साहित्य में आज कल वत्सल, भक्ति आदि रसों की भी चर्चा की जाती है। आगे इसका परिचय दिया जाता है।

(१०) वत्सल

वत्सल रस की गणना प्राचीन आचार्यों ने 'रस' में नहीं की है। साहित्य शास्त्र में सर्व स्वीकृत और मान्य 'रस' ६ ही हैं। सर्वत्र नव रस का ही विधान है, और तभी कहा भी है किसी ने—

विधि सो कवि सब विधि बड़े या में संशय नाहिं।
षटरस विधि की सृष्टि में, नवरस कविता माहिं।

परन्तु सामान्य व्यवहार में हम वत्सल (या 'वात्सल्य' रस) का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार 'भक्ति रस' का भी उल्लेख होता है।

पुरातन शास्त्रकारों ने वत्सल रस को 'रति' का एक विशेष रूप 'देवादि विषयक रति' भाव ही माना था :—

'स्नेहो भक्तिर्वात्सल्यमिति रतेरेव विशेषः। तेन तुल्ययोरन्योन्यं रतिः स्नेहः, अनुत्तमस्योत्तमे रतिर्भक्तिः, उत्तमस्थानुत्तमे रति वात्सल्यम्। इत्येवमादीय भावस्यैवास्वाद्यत्वम्।' अर्थात्—स्नेह, भक्ति और वात्सल्य, 'रति' भाव के ही रूपविशेष हैं। तुल्य (समान) जनों की पारस्परिक रति 'स्नेह' है; उत्तम के प्रति अनुत्तम की रति 'भक्ति' है और अनुत्तम के प्रति उत्तम की रति ही 'वात्सल्य' है। आस्वाद्य होने की दृष्टि से ये सब 'भाव' ही हैं।

यह 'अनुत्तम' के प्रति 'उत्तम' की अर्थात् बड़ों (माता, पिता, भाई, स्वामी) की छोटों (पुत्र, पुत्री, भाई, दास आदि) के प्रति रति ही 'वात्सल्य' है।

परन्तु प्राचीन आचार्यों में से कइयों ने 'वत्सल' रस की सत्ता, किसी न किसी रूप में स्वीकार की है। आचार्य रुद्रट ने 'प्रेयस' रस की कल्पना की (स्नेहप्रकृति प्रेयान्)। भोज अपने ६ ही नहीं, दस रसों की कल्पना करते हुए वात्सल्य को उचित स्थान दिया है—शृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य-वीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः। इसी प्रकार हरिपालदेव ने भी वत्सल रस को माना है—'शान्तो ब्रह्मनिधः पश्चात् वात्सल्यास्त्यस्ततःपरम।

'साहित्य दर्पण' नामक विख्यात और प्रतिष्ठित ग्रन्थ के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने 'वत्सल' रस की पूर्ण प्रतिष्ठा की है—'स्फुट' चमत्कारि तथा वत्सलं च रसं विदुः'।

वस्तुतः वत्सल' रस केवल चमत्कारक ही नहीं है, वरन् यह उत्कट और आस्वाद योग्य 'भाव' का परिपाक है अतः इसकी मान्यता आवश्यक है।

माता पिता का शिशु के प्रति सहज स्नेह या वात्सल्य भाव होता है। वह मनोवैज्ञानिकों ने अनुसार आत्मबंशरक्षा की वृत्ति पर आधारित है. अतः यह भी एक स्थायी भाव ही है। साथ ही 'वात्सल्य' स्थायीभाव को सहयोगी भावों (संचारियों) मृदुलता, आशा, अनुराग, ममता, करुणा आदि का ही सहयोग मिलता है।

स्थायीभाव

वात्सल रस का स्थायीभाव 'वात्सल्य' है; इसे 'स्नेह' भी सकते हैं। यद्यपि रुद्रट ने इसे स्नेह-प्रकृति मानते हुए प्रेयस् रस की कल्पना की थी, परन्तु स्नेह शब्द पर्याप्त सभी-चीन है और तदनुसार वत्सला शब्द भी कुछ आचार्य, जैसे 'करुणा' और 'ममता' को स्थायीभाव मानते हैं, परन्तु वात्सल्य में इन दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है।

आलम्बन

पुत्र या पुत्री तथा अन्य अनुजन अर्थात कनिष्ठ जन।

उद्दीपन

शिशु या बालक का रूप-व्यापार, क्रीड़ा-कौतुक तथा अन्य गुण और आचरण।

अनुभाव

शिशु को प्यार-दुलार करना, मुख-कपोल चुम्बन छाती से चिपटाना आदि

संचारी भाव

उत्सुकता, हर्ष, आवेग, गर्व आदि तथा वियोग में (कभी कभी) शंका, विषाद, वितर्क, आदि संचारी होते हैं।

उदाहरण

(१) किलक अरे मैं नेक निहारूँ !
इन दांतों पर मोती वारूँ !
पानी भर आया फूलों के मुख में आज सवेरे,
हा, गोपा का दूध जमा है राहुल मुख में तेरे।
लटपट चरण चाल अटपट सी मनभाई है मेरे।
तू मेरी अँगुली धर माधव
मैं तेरा कर धारूँ !

—यशोधरा (गुप्तजी)

यहां गोपा (यशोधरा) माता वात्सल्य का 'आश्रय' है और पुत्र राहुल 'आलम्बन' है। राहुल की किलक, सुन्दर स्वच्छ जमे दूध जैसे दांत, लटपट चरण अटपट चाल आदि उद्दीपन विभाव हैं। गोपा की 'मैं नेक निहारूँ' तथा 'लटपट चरण चाल अटपट सी मनभाई है मेरे' की प्रशंसा आदि 'अनुभाव' है तथा इनसे उत्सुकता, हर्ष, गर्व आदि व्यंजित 'संचारी' हैं।

(२) वर दन्त की पगति कुन्द कली,
अधरगधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै,
छवि मोतिन माल अमोलन की।
घुँघुरारि लटैं लटकै मुख ऊपर,
कुण्डल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करैं 'तुलसी',
बलि जाउँ लला इन बोलन की।

—'कवितावली' (तुलसी)

(११) भक्ति

भक्ति को शास्त्र में रस नहीं माना गया है, परन्तु लोक-प्रयोग में यह भी वत्सल की भांति ही स्वीकृत 'रस' है।

'भक्ति' को पृथक रस इसलिए नहीं माना गया कि उसका अन्तर्भाव 'रति' के व्यापक भाव में हो ही जाता है।

एक आपत्ति यह भी की जाती है कि 'भक्ति' सामान्य मानवीय मूल या सहज वृत्ति नहीं है। शिशु में यह भावना विद्यमान नहीं होती। अतः यह स्थायी भाव ही न होने के कारण 'रस' की स्थिति में नहीं पहुंच सकता। परन्तु शृङ्गार या रति भाव भी तो शिशु में नहीं रहता, वह भी एक विशेष अवस्था के पश्चात् ही विकसित होता है।

भाव या भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेवालों में श्रेष्ठ मैग्डूगल ने केवल भय (Fear), जुगुप्सा (Hatred) क्रोध (Anger) विस्मय (Surprise) और लज्जा ही मूल वृत्तियाँ मानी हैं, परन्तु स्थायी भाव इन से कुछ अधिक हैं। अतः मूलवृत्ति ही स्थायी भाव का एक मात्र आधार नहीं है।

शान्त रस और भक्ति रस में मौलिक अन्तर यह है कि जहां शान्त रस का लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष है वहां भक्ति रस का लक्ष्य मुक्ति नहीं है। स्वयं तुलसीदास जी का साक्ष्य है :—

अस विचार हरि भगति सयाने। मुक्ति निरादरि भगति लुभाने॥

शान्त रस निवृत्तिमूलक है, भक्ति रस प्रवृत्तिमूलक। दोनों अपने आप में स्वतन्त्र और पूर्ण 'रस' हैं। रवीन्द्रनाथ ने 'नैवेद्य' में भक्ति को ईश्वर प्रेम का परिपाक माना है और मुक्ति को अमोह अर्थात विरक्ति का—

जे किछु आनन्द आछे दृश्ये गन्धे गाने।
तोमार आनन्द र'बे तार'र माझखाने।
मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया।
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया। (नैवैद्य)

इसके अतिरिक्त मनुष्य की परोक्ष-सत्ता या ईश्वर या देवता के प्रति अनुरक्ति असक्ति भावना कोई नगण्य भाव नहीं है। बौद्धिक युग में भी उसका अपना अक्षुण्ण स्थान और महत्त्व है। फिर भक्ति अलौकिक ही

नहीं लौकिक व्यक्तित्व के प्रति भी होती देखी गई है जैसे राम, कृष्ण, ईसा मुहम्मद, गांधी आदि के प्रति।

स्थायी भाव

देव-आसक्ति या देवानुराग भक्ति रस का स्थायी भाव है। आसक्तिवान या भक्त इसका आश्रय है।

आलम्बन

ईश्वर, देव या अलौकिक शक्ति-सम्पन्न-व्यक्तित्व 'भक्ति' का आलम्बन होता है। अवतार, महापुरुष आदि की गणना इनमें हो जाती है।

उद्दीपन

परमेश्वर के लोक-मंगलकारी रूप और व्यापार, भक्त-संगति, गुण-गान आदि।

अनुभाव

नेत्रनिर्मीलन, गद्गदकण्ठ, रोमांच, हाथ जोड़ना, प्रणिपात अश्रुपात झूमना, नाचना, गाना, कीर्तन आदि के भक्ति नव प्रकारों-का इसमें समावेश हो सकता है।

संचारी भाव

हर्ष, उत्सुकता, मद, ग्लानि आदि इसके संचारी हैं।

आधुनिक कविता से एक उदाहरण लीजिए।

क्या पूजा क्या अर्चन रे!
उस असीम का सुन्दर मन्दिर—
मेरा लघुतम जीवन रे!
मेरी श्वासें करती रहतीं—
नित प्रिय का अभिनन्दन रे!
पदरज को धोने उमड़े—
आते लोचन में जलकण रे!
अक्षत पुलकित रोम मधुर।
मेरी पीड़ा का चन्दन रे!

स्नेह भरा जलता है झिलमिल—
मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक में—
नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूल बने उड़ते रहते हैं—
प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
'प्रिय प्रिय' जपते अधर—
ताल देता पलकों का नर्तन रे !

यहा असीम (परोक्ष तत्त्व) आलम्बन है । कवयित्री अथवा मानव-सत्ता आश्रय है । चारो, अश्रु, रोम-पुलक, अपलक दृष्टि, प्रिय प्रिय राजा आदि अनुभाव हैं ।

'रस' की 'निष्पत्ति'

शास्त्रीय स्थापनाएँ

स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी (व्यभिचारी) भावों के संयोग से आस्वादन करने योग्य बन जाता है तब सहृदय प्रेक्षक के हृदय में रसरूप से उसका आस्वादन होता है।

स्मरणीय है कि भाव के अनुभव और उसके रसास्वादन में अन्तर है। भाव के अनुभव में तो वह उसके प्रकृत रूप में ही होता है जैसे शोक में शोक, क्रोध में क्रोध घृणा में घृणा और प्रेम में प्रेम। परन्तु उसके आस्वादन में वह शुद्ध आनन्द रूप में ही गृहीत होता है क्योंकि उसमें व्यक्तिगत राग-विराग का स्पर्श नहीं रह जाता।

भरत मुनि ने रस' की निष्पत्ति की प्रक्रिया का संकेत करते हुए अपने शास्त्र-ग्रन्थ "नाटय शास्त्र" में लिखा था—

"विभागानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्ति"

(क) विभाव (नायक -नायिका आदि आलम्बन, और संगीत, ज्योत्स्ना निभृत, मलय पवन आदि उद्दीपन),

(ख) अनुभाव (अश्रु, 'वैवर्ण्य, रोमाच, स्वरभंग आदि सात्त्विक और कायिक चेष्टाएँ)

(ग) व्यभिचारी (हर्ष, विमर्ष, असूया, चिन्ता आदि) स्थायीभाव के संचारी भावों के संयोग से **रस** की निष्पत्ति (सिद्धि) होती है।

प्रश्न यह उठता है और यही प्रश्न रस के प्रसंग में जटिल बन गया है कि:—

(१) यह संयोग, क्या और कैसा है ?

(२) 'निष्पत्ति' का क्या आशय या तात्पर्य है ?

जिस प्रकार गुड़ आदि पदार्थों, व्यंजनों और औषधियों से षट्-रस बनते हैं उसी प्रकार विविध भावों से सभी स्थायीभाव रसत्व को पहुँचते हैं।

'साहित्यदर्पण' कार विश्वनाथ ने लिखा है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्।

—सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित, वासना रूप रति आदि स्थायी भाव ही विभाव (आलम्बन-उद्दीपन), अनुभाव (आश्रय की चेष्टा) और संचारी (व्यभिचारी) भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

'काव्य प्रकाश' कार मम्मट ने लिखा है—

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।

—'स्थायी' (अविच्छिन्न प्रवाहवाले) रति आदि (ललनादिविषयक प्रीतिरूप कोई विशेष मानसिक व्यापार) के जो 'आलम्बन' (प्रीति की उत्पादिका ललना आदि) और 'उद्दीपन' (प्रीति के पोषक चन्द्रोदयादि) ये दो कारण हैं तथा कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि जो कायिक, वाचिक एवं मानसिक कार्य हैं तथा शीघ्रता से उनकी प्रतीत करानेवाले जो निर्वेदादि सहकारी भाव हैं, वे यदि श्रव्य-काव्य (रघुवंश आदि) और नाट्य (अभिज्ञान शाकुन्तल, उत्तर रामचरित आदि) ग्रन्थों के उपयोग में लाये जायं तो उन्हीं को 'विभाव' (स्वाद लेने योग्य) 'अनुभाव' (अनुभव में लाने योग्य) और व्यभिचारिभाव (विशेष रूप से हृदय में संचार करने योग्य)—इन नामों से पुकारते हैं। इन्हीं विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यंजना वृत्ति द्वारा जो स्थायी भाव प्रतिपादित (सिद्ध) किया जाता है उसी (स्थायी भाव) का नाम ध्वनिकार आदि आचार्यों ने 'रस' रखा है।

इसी प्रकार 'रस-गंगाधर' कार पंडितराज जगन्नाथ का मत यों है—

"मान लीजिये कि शकुन्तला के विषय में दुष्यन्त की अन्तरात्मा में रति अर्थात् प्रेम उत्पन्न हुआ। ऐसी दशा में रति का उत्पादन करनेवाली

शकुन्तला हुई। अतः वह प्रेम का आलम्बन-कारण हुई। चांदनी छिटक रही थी ; वनलतायें कुसुमित हो रही थीं, अतः वे और वैसी ही अन्य वस्तुएँ उद्दीपन कारण हुईं। दुष्यन्त का प्रेम दृढ हो गया और शकुन्तला के प्राप्त न होने के कारण उनकी आंखों से अश्रु गिरने लगे। यह अश्रुपात उस प्रेम का कार्य हुआ और इसी तरह उस प्रेम के साथ-साथ उसका सहकारी भाव 'चिन्ता' उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा कि मुझे उसकी प्राप्ति कैसे हो ? पूर्वोक्त सभी बातें का हम संसार में देखा करते हैं। अब पूर्वोक्त प्रक्रिया के अनुसार, ससार में 'रति' आदि के शकुन्तला आदि आलम्बन कारण होते हैं, चांदनी आदि उद्दीपन कारण होते हैं, उनसे अश्रुपात आदि कार्य उत्पन्न होते हैं और चिन्ता आदि उनके सहकारी भाव होते हैं। वे ही जब जिस रस का वर्णन हो, उसमें उचित एवं ललित शब्दों की रचना के कारण मनोहर काव्य के द्वारा उपस्थित होकर सहृदय पुरुषों के हृदय में प्रविष्ट होते हैं तब सहृदयता और एक प्रकार की भावना—अर्थात् काव्य के बार-बार अनुसन्धान में उनमें से 'शकुन्तला दुष्यन्त की प्रेमिका है' इत्यादि भाव निकल जाते हैं और अलौकिक बनकर—संसार की वस्तुएँ न रहकर जो कारण हैं वे विभाव, जो कार्य हैं वे अनुभाव और जो सहकारी हैं वे व्यभिचारी भाव कहलाने लगते हैं। बस, इन्हीं के द्वारा, पूर्वोक्त अलौकिक क्रिया के द्वारा रसों की अभिव्यक्ति होती है।"

'रस' की अनुभूति अथवा अभिव्यक्ति होती है—यह सभी आचार्य और विद्वान् मानते हैं और सब सामान्य जन भी इसको स्वानुभव-सिद्ध मानते हैं।

परन्तु प्रश्न यह है कि वास्तव में 'रस' का अनुभव करता कौन है ? काव्य का दर्शक या श्रोता या पाठक ? या नाटक के पात्र ? या नाटकीय पात्रों के अनुकार्य मूल व्यक्ति ?

'नाट्य शास्त्रकार' भरत मुनि के रस-सूत्र ('विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पतिः') के 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्दों की व्याख्या बड़े प्राचीन पंडितों के विवेचन का विषय रही है। भरत-मुनि के परवर्ती

आचार्यों ने इसकी व्याख्या करते हुए भिन्न-भिन्न मत स्थिर किये हैं। उन सब आचार्यों के विवेचन का लक्ष्य यही था कि 'रस का मूल भोक्ता है कौन ? यह अनेक पारंगत विद्वानों के गंभीर मंथन के पश्चात हमें निष्कर्ष रूप में मिल सका है। वे शास्त्रीय सिद्धान्त चार हैं:—

---

(१) भट्ट लोल्लट का 'आरोपवाद' (उत्पत्तिवाद)

भरत-सूत्र के प्रथम व्याख्याता मीमांसक भट्ट लोल्लट ने कहा कि रस का वास्तविक आस्वादन नायक-नायिका (मूल व्यक्ति) ही करते हैं। सामाजिक के हृदय में तो नट-नटी के माध्यम के उसके द्वारा रस की प्रतीति में ही 'रस' उत्पन्न होता है।

उनके मूल शब्द इस प्रकार हैं—

जलनादिभिरालम्बनविभावैः स्थाया रत्यादिको जनितः, उद्यानादिभिरुद्दीपनविभावैरुद्दीपितः, अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपणादिभिः प्रतीति योग्य कृतः, व्यभिचारिभिः उत्कण्ठादिभिः रामादावनुभैयरसः। नटे तत्तुल्यरूपानुसन्धानेन शादारोप्यमाणः सामाजिकस्य चमत्कारहेतुः।

इसका अर्थ यह होगा कि रति आदि स्थायी भाव नायिका आदि आलम्बन विभावों द्वारा उत्पन्न होकर और उद्दीपन आदि उद्दीपन विभावों द्वारा उद्दीप्त होकर (तदनन्तर) कटाक्ष, भुजालिंगन आदि अनुभावों से प्रतीति योग्य अर्थात् अनुमान किये जाने योग्य बनकर उत्कण्ठा आदि व्यभिचारियों द्वारा परिपुष्ट होकर रामआदि अनुकार्यों में (अर्थात् उनमूल चरित्रों में जिनका नट अनुकरण या अभिनय करता है) रस रूप पाते हैं। नट में रूप की सदृशता के कारण वह रस आरोपित होकर सामाजिकों दर्शकों आदि को उनके अभिनय-कौशल से चमत्कृत अर्थात् प्रसन्न कर देता है। तात्पर्य यह है कि 'विभाव' कारण हैं और रस कार्य।

यहाँ सामाजिक के आनन्द को स्वीकार अवश्य किया गया है परन्तु आग्रह इस बात पर है कि रस का वास्तविक आस्वादन नायक नायिका करते हैं। सामाजिक के हृदय में तो उस 'रस' का केवल आरोप या अनुमान ही होता है। उसके मन में नट-नटी के माध्यम से, उनके रस का अनुमानित 'रस' आता है। इस प्रकार नायक-नायिका का रस, आत्मभुक्त, आत्मानुभूत हुआ और सामाजिक का रस 'पर-भुक्त', परानभूत या अनुमानित। सार यह है कि—

स्थायीभाव (१ आलम्बन विभावों में 'उत्पन्न' होता है,
(२) व्यभिचारी भावों से पुष्ट होता है,
तथा (३) अनुभावों द्वारा व्यक्त होता है,

यहा 'संयोग' का अर्थ सम्बन्ध है और 'निष्पत्ति' का अर्थ आरोप से उत्पत्ति है। अतः इसे 'आरोपवाद' भी कहा गया है और उत्पत्तिवाद भी।

आलोचना

यह विचार करना आवश्यक है कि उक्त स्पष्टीकरण में—

(क) नायक-नायिका (दुष्यन्त-शकुन्तला) से क्या आशय है ?
(ख) मूल ऐतिहासिक दुष्यन्त-शकुन्तला का नाटक में आये हुए दुष्यन्त शकुन्तला का ?

(२) नट-नटी का इससे क्या सम्बन्ध है ?
(३) मूल चरित्रों के रस का अनुमान समाजिक अपने हृदय में कैसे कर सकते हैं ?

एक दिन अचानक दुष्यन्त और शकुन्तला तपोवन की रम्य कुञ्ज-स्थली में मिलते हैं और एक दूसरे के रूप सौंदर्य पर मुग्ध हो जाते है। दोनों के हृदय में स्थित वासना-रूप रति भाव जाग्रत हो जाता है। दुष्यन्त शकुन्तला की ओर मुग्ध नयनों से देखता रह जाता है - शकुन्तला भी चोरी-चोरी सलज्ज दृष्टि उसकी ओर डालती है। ये अनुभाव उन दोनों की जाग्रत रति-भाव को व्यक्त कर देते हैं। फिर दोनों के मन में अनेक भाव उठने लगते हैं और वे प्रेम-संताप में

विकल हो उठते हैं। इन संचारियों से 'रति' भाव परिपुष्ट होता है अन्त में दुष्यन्त स्वयं वहां प्रकट हो जाता है। इस प्रकार दोनों का संयोग होने पर रति भाव पूर्णतया परिपुष्ट होकर शृंगार रस में परिणत हो जाता है और वे दोनों उसका आनन्द लेते हैं। इस प्रकार रस के वास्तविक भोक्ता नायक--नायिका ही हुए।

नट-नटी तो दुष्यन्त-शकुन्तला का अभिनय नाटक में करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक दुष्यन्त-शकुन्तला **नायक**-नायिका के रूप में नाटक या काव्य में आये। नट-नटी तो उनके माध्यम मात्र हुए।

जब प्रेक्षक (दर्शक) नट-नटी को नायक-नायिका का अभिनय करते पाता है तो वातावरण तथा नाट्य कौशल आदि के कारण वह उनमें दुष्यन्त-शकुन्तला का आरोप कर लेता है।

रंग-मंच पर उन दोनों को रंग ग्रहण करते हुए प्रेक्षक समझता है कि वास्तविक-दुष्यन्त शकुन्तला ही रस प्राप्त कर रहे हैं और उनकी रस-दशा की प्रतीति से स्वयं भी रसानुभव करने लगता है।

अब इस स्थापना में दो प्रकार की आपत्तियां हैं—पहली आपत्ति तो यह है कि यह कहना दोषपूर्ण है कि ऐतिहासिक दुष्यन्त शकुन्तला ने 'रस' का अनुभव किया था। उन्होंने तो वास्तव में प्रेमभाव का अनुभव किया था। जो बात नायक-नायिका प्रेम के संबन्ध में कहीं जा सकती है वही नाटक के अन्य भावों को विषय में भी कही जा सकती है वास्तव में नाटक में नट-नटी जिस भाव का अनुभव करते हैं वह चाहे रति हो चाहे शोक, घृणा चाहे क्रोध वही भाव प्रेक्षक तक स्थानन्तरित होता है। परंतु वह प्रेक्षक के पास वास्तविक भाव बनकर नहीं वरन् भाव प्रतीत से आने वाले **आनन्द** का रूप लेकर आता है। यही 'रस' है।

दूसरी आपत्ति यह है कि दो ऐतिहासिक व्यक्तियों को, यदि वे राम और सीता जैसे देवोपम व्यक्ति हुए तो, शृंगार (प्रेम) आदि की चेष्टाएँ

करते हुए देखकर हम 'आनन्द का' कैसे अनुभव कर सकते हैं। क्या यह दृष्टता अनैतिकता नहीं है ?

साथ ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी दो व्यक्तियों के प्रेमाचार में हमें ईर्ष्या और क्रोध ही हो सकता है, प्रेम या आनन्द नहीं।

सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि 'रस' को विभाव आदि का कार्य मानना उचित नहीं, क्योंकि 'कार्य' तो कारण' के अभाव में भी अस्तित्व में रह सकता है, परन्तु 'रस' तो तभी तक रहता है जब तक विभाव आदि का प्रत्यक्षीकरण होता रहता है। इसके अतिरिक्त 'कारण' और कार्य' का पूर्वा-पर सम्बन्ध हुआ करता है, परन्तु विभावों का प्रत्यक्षीकरण और 'रस' का आस्वादन तो साथ-साथ होते हैं।

अन्त में यह भी संकेत करना आवश्यक है कि 'रस' में नट-नटी को बीच में लाना आवश्यक है। ये तो 'नाटक' (दृश्य काव्य) में ही होते हैं क्योंकि 'नाटक' अभिनेय है। पठित नाटक में या श्रव्य काव्य में भी तो रस की अनुभूति हो जाती है, फिर नट-नटी की अनिवार्यता कहाँ रही ?

---

(२) शंकुक का 'अनुमितिवाद' (अनुमानवाद)

भरत-सूत्र के दूसरे व्याख्याता नैयायिक श्री शंकुक ने भट्ट लोल्लट के 'आरोप वाद' को न मानते हुए 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' किया। यह मत न्याय-शास्त्र के अनुसार है। जिस प्रकार धुएँ से अग्नि का अनुमान हो जाता है (अर्थात् धुआ 'अनुमापक' और अग्नि 'अनुमाप्य' है) उसी प्रकार शंकुक के मत से 'विभाव' अनुमापक है और 'रस' अनुमाप्य; अथवा यों कहें कि 'विभाव' गमक है और 'रस' गम्य।

उनका व्याख्याता है कि रस की मूल-स्थिति तो ऐतिहासिक नायक-नायिका में ही है परन्तु प्रेक्षक उसे (आरोप द्वारा) प्रत्यक्षतः प्राप्त नहीं करता वरन 'अनुमान' से प्राप्त करता है।

शंकुक को पहली आपत्ति तो यही है कि दूसरे को रस-दशा में पाकर प्रेक्षक को रस-प्रतीति नहीं होगी। यदि कोई प्रतिक्रिया होगी। तो यह अनुकूल न होकर प्रतिकूल ही हो सकती है।

इसके अतिरिक्त उसकी आपत्ति है कि जिन नायक-नायिका को प्रेक्षक नहीं जानता, उनके रसास्वादन की अनुभूति प्रेक्षक को कैसी होगी यहाँ शंकुक को यह समाधान नहीं सूझा कि यह अनुभूति कल्पना के सहारे होगी, नाटककार अपने कौशल से, पहिले नायक-नायिका से अपना तादात्म्य करता है और उसी कौशल से पाठक या श्रोता का भी उनसे तादात्म्य करा देता। जो हो, शंकुक ने रस की 'उत्पत्ति' न मान कर उसकी 'अनुमिति' मानी। स्पष्ट कहें तो यह होगा कि नट-नटी में ही प्रेक्षक, नायक-नायिका का 'अनुमान' करता है और इसी क्रम से उनके मन के मूल भाव का 'अनुमान' कर लेता है, 'जैसे चित्र के घोड़े को लोग घोड़ा ही कहते हैं, उसी प्रकार इस चित्र-तुरग न्याय से नाटक का प्रेक्षक नट-नटी को ही नायक-नायिका समझता है और उनकी मनोवृत्तियाँ उनमें आरोप करके स्वय रसास्वाद करता है। इस प्रकार का अनुमित भाव ही 'रस' है। वह वास्तविक भाव का अनुकृत-रूप ही है। रसास्वाद के जिस तत्त्व को भट्टलोल्लट ने प्रेक्षक तक मानवीय सहानुभूति से पहुँचाया था उसे शंकुक ने अनुमिति (अनुमान) से पहुंचाया। सीधी बात को उसने यह टेढ़ा रूप दिया। उसने नट-नटी के अभिनय कौशल को रसानुभूति में महत्त्वपूर्ण अवश्य माना।

इस सिद्धान्त पर आपत्ति यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञान से जो चमत्कारपूर्ण आनन्द मिल सकता है, वह अनुमान से नहीं। परन्तु जो समस्या 'आरोपवाद' में थी, कि 'रस' यदि प्रेक्षक में अवस्थित नहीं है तो, वह दूसरों के भावों को 'अपना' कैसे कर सकता है? वह इस सिद्धान्त (अनुमितिवाद) से भी नहीं सुलझ सकी।

दूसरी आपत्ति तो यह है कि रस 'श्रव्य काव्य' में भी आता है वहाँ तो नट-नटी होते ही नहीं। और यह व्याख्या नाटक को ही दृष्टि में रखकर की गई है अतः एकांगी है।

अन्तिम आपत्ति यह है कि 'रस' का आस्वादन तो दर्शक पाठक-श्रोता ही किया करते हैं—नाटक के नट-नटी या मूल (अनुकार्य) व्यक्ति तो अमुक भाव की अनुभूति करते हैं। इसलिये यह आपत्ति ही अनुचित है कि दूसरे को **रसदशा** में पाकर 'प्रेक्षक' को रस-प्रतीति नहीं होगी। यदि कोई प्रतिक्रिया होगी तो यह अनुकूल न होकर प्रतिकूल भी हो सकती है।

---

(३) भट्टनायक का 'भुक्तिवाद' (भोगवाद)

भरत-सूत्र के तीसरे व्याख्याता साख्यवादी भट्टनायक ने मीमांसक लोल्लट के 'आरोपवाद, और नैयायिक शकुक के 'अनुमितिवाद' का विरोध करते हुए कहा—'रस' की न उत्पत्ति होती है और न 'अनुमिति' ही होती है। रसास्वादन प्रत्यक्ष ज्ञान से होता है 'आरोप' या 'अनुमान' से नहीं होता।

उसने दोनों वादों पर आपत्ति प्रस्तुत की यदि रस दूसरे के भाव के साक्षात्कार ज्ञान से उत्पन्न होता है, तो 'क्रोध' और शोक से क्रोध और शोक की ही उत्पत्ति होनी चाहिए; 'आनन्द' की नहीं। फिर उस क्रोध और शोक के लिए क्यों तो कोई नाटक देखे और क्यों कोई काव्य पढ़े?

दूसरी आपत्ति यह है कि यदि 'रस' सहृदय सामाजिक के हृदय में ही अवस्थित है और विभाव, अनुभाव और संचारी (व्यभिचारी) भाव के सहयोग से अभिव्यक्त हो जाता है, तो नायक का व्यक्तिगत भाव प्रेक्षक के वैसे ही व्यक्तिगत भाव को कैसे अभिव्यक्त कर सकेगा? थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाये कि रति-शोक आदि भावों की अभिव्यक्ति हो भी जाय, परन्तु समुद्र-लंघन के उत्साह जैसे अलौकिक भाव की अभिव्यक्ति साधारण प्रेक्षक में कैसे हो सकती है?

अतः भट्टनायक ने इनका समाधान यों किया। उसने 'रस' की अवस्थिति न नायक-नायिका में मानी, न नट-नटी में उसने संयोग का अर्थ

भोज्य-भोजक-सम्बन्ध क्रिया और निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति या भोज क्रिया। उन्होंने 'रस' की अवस्थिति सहृदय प्रेक्षक या पाठक में ही मानी। उन्होंने रसास्वाद की प्रक्रिया में काव्य की तीन शक्तियों की धारणा की (१) **अभिधा** (२) **भावकत्व** और (३) **भुंजकत्व**। 'अभिधा' शक्ति द्वारा प्रेक्षक काव्य के शब्दार्थ को ग्रहण करता है। 'भावकत्व' द्वारा उस अर्थ का भावन करता है। 'भावन' होने का अर्थ यह है भाव व्यक्तिगत न रहकर समाजगत हो जाता है। शास्त्रीय भाषा में उसका व्यक्तिकरण मिटकर समाजीकरण या 'साधारणीकरण' हो जाता है, वह भाव व्यक्ति-विशेष अर्थात नायक-नायिका का न रहकर सर्वसाधारण प्रेक्षक का होता है।

उदाहरण के लिये दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति रति दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति रति नहीं रह जाती, न नट की नटी के प्रति वह तो पुरुष-मात्र की नारी-मात्र के प्रति रति ही बन जाती है।

'भावकत्व' शक्ति-द्वारा नायक-नायिका नट-नटी प्रेक्षक-प्रेक्षिका आदि का 'अर्यानिजः परोवेति' वाला वैयक्तिक तत्त्व (Personal element) नष्ट होकर साधारणीकृति भावानुभूति रह जाता है। इसी समय काव्य की तृतीय शक्ति भुंजकत्व शक्ति सक्रिय होती है और नायक-नायिका का मनोभाव प्रेक्षक के द्वारा भुंजति (भुक्त) होता है। इस प्रकार रजोगुण-तमोगुण का लोप होकर सतोगुण का आविर्भाव हो जाता है; चित्तवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और उस शुद्ध आनन्द की अनुभूति होती है जिसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कह सकते हैं। अर्थात् रस की 'अभिव्यक्ति' नहीं 'भक्ति' होती है।

भट्टनायक के मत का निष्कर्ष यह है कि काव्य-नाटकों के सुनने और देखने पर तीन कार्य होते हैं—पहले उसका अर्थ समझ में आता है; फिर उसका भावन अर्थात् चिंतन किया जाता है, इसके प्रभाव से सामाजिक यह अनुभव नहीं कर पाते, कि काव्य नाटक में जो सुना और देखा जाता है वह किसी दूसरे से सम्बन्ध रखता है या हमारा ही है। अन्ततः काव्य या नाटक का दुःख भी सर्व-साधारण को सुख ही क्यों देता है?

भट्टनायक का यह 'साधारणीकरण'-सिद्धान्त रस-शास्त्र में एक देन है; क्योंकि इसी में इस जटिल पहेली का उत्तर मिलता है कि इसके बाद सत्वगुण के उद्रेक आत्म चैतन्य से प्रकाशित साधारणीकृति रति आदि स्थायीभाव सामाजिक अस्वाद करने लगते हैं यही 'रस' है।

इस पर विद्वज्जनों को केवल यह आपत्ति हुई कि काव्य की तीन शक्तियों की धारणा का आधार अशास्त्रीय है। उसका प्रमाण क्या है? शास्त्रीय युक्ति-युक्त सिद्धान्त के स्थान पर किसी अप्रमाणित सिद्धान्त की दुहाई देना उचित नहीं।

जब भरतमुनि ने कहा था 'काव्यार्थान् भावयन्तीति भावाः' तो उनका आशय ही यह था कि जो काव्यार्थ अर्थात् मुख्य अर्थ को (मनुष्य की) भावना का विषय बनाते हैं वे भाव हैं। इस प्रकार 'भावकत्व' तो भावों का धर्म या गुण है। स्थायीभाव ही (संचारियों से पुष्ठ होकर) काव्यार्थ के आधार पर ही आस्वाद योग्य बनता है अतः रस भावक तो काव्यार्थ ही है उसी से रस व्यंजित होता है। रस का योग उसका आस्वाद ही तो है। आस्वाद्यत्वाद्रसः,। इस प्रकार भोजकत्व शक्ति की पृथक कल्पना की क्या आवश्यकता थी? व्यंजना और ध्वनि से ही काम चल सकता था।

परन्तु यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि भट्ट नायक ने जो व्याख्या दी है वह नाटक और काव्य दोनों पर समान रूप से घटित होती है और कई अंशों में वैज्ञानिक भी है।

---

(४) अभिनवगुप्त का 'अभिव्यक्ति वाद'

भरत सूत्र के चौथे व्याख्याता श्री अभिनवगुप्त ने भट्टनायक का मत अमान्य किया। (परन्तु अंशतः) उन्होंने इस रस-सूत्र की व्याख्या ढंग से की।

मानव आत्मा सत्य-सनातन है। आत्मा-मात्र में, विशेषतया सहृदय की आत्मा में (मानव-प्राणी होने के नाते) कुछ मूलभूत वासनायें रहती हैं जिन्हें 'सस्कार' (Instincts) कहा जा सकता है। इन्हीं वासनाओं में से "स्थायी" भाव निकलते हैं। विभाव, अनुभाव और सचारी के कुशल प्रदर्शन से ये गुप्त (सुप्त) वासनायें (स्थायीभाव) ही "रस" रूप में उद्‌बुद्ध होती है या अभिव्यक्त होती है। आत्मा पर जो अज्ञान का आवरण छाया हुआ था वह कुशल अभिनय तथा विभावानुभाव के दर्शन से दूर हो जाता है और उसके वासना रूप में स्थित भाव अभिव्यक्त हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मानन्द के प्रकाश में अनुभूत भाव ही आनन्द या "रस" बन जाता है।

या यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षक की तन्मयता में, उसकी चित्तवृत्ति में विकारो का लोप होकर शुद्ध आनन्दमयी चेतना आ जाती है। व्यक्तिगत भाव की वैयक्तिकता मिट जाती हैं, अपना-परायापन खो जाता है। और वह भाव साधारणभाव मात्र रह जाता है। इसी से वह सर्वग्राह्य बन जाता उसका मूल भावरूप नष्ट हो जाता है। और केवल आनन्द की अनुभूति रह जाती है ह आनन्द की लौकिक नहीं होती। वैयक्तिक सम्बन्धों से मुक्त होकर निर्विशेष (सामान्य) रूप से प्रेक्षक को उसकी अनुभूति मिलती है। इसलिए उसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जाता है।

अभिनव गुप्त का मत सार रूप में यों होगा— :

क—रस की निष्पत्ति सहृदय सामाजिक में होती है।

ख—सामाजिक में स्थाया भाव 'वासना' या संस्कार रूप में रहते हैं।

ग—और वे साधारणीकृत विभाव आदि से उद्‌बुद्ध होकर अव्यक्त से अभिव्यक्त हो जाते हैं :—जैसे जल के छीटों से मिट्टी की अव्यक्त गंध व्यक्त हो जाती है।

घ—काव्य का पाठ, श्रवण तथा नाटक का अभिनय सहृदय के स्थायी भाव को जागृत कर देता है। ये स्थायी भाव शुद्ध रूप में जागृत होते

हैं अत' चित्त की वृत्तियां एकाग्र होकर ब्रह्मानन्दसहोदर "रस" उत्पन्न करती है।

ङ—'संयोग का अर्थ 'व्यञ्जना' है और निष्पत्ति का अर्थ 'अभिव्यक्ति'।

दृश्यमान विरोध होकर भी अभिनव गुप्त और भट्टनायक के सिद्धान्तों में पर्याप्त समानता है। अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के 'साधारणीकरण'—वदो को ज्यो का त्यों ग्रहण किया है। तमोगुण-रजोगुण के लोप और सतोगुण के आविर्भाव से काव्यानन्द की अनुभूति को भी तद्वत् ही स्वीकार कर लिया है। अन्तर केवल इतना ही है कि अभिनवगुप्त भावकत्व और भुंजकत्व का निराधार (और व्यर्थ) मानकर 'व्यञ्जना' और 'ध्वनि' की सत्ता मानते हैं। भट्ट नायक का मत है कि काव्य की प्रकृति ही ऐसी है कि सहृदय पहिले उसका अर्थ 'ग्रहण' करता है। फिर 'भावन' (तिनविशेषरूप में चिन्तन) करता है और इस प्रकार आनन्द-प्राप्ति सहज हो जाती है। परन्तु अभिनवगुप्त का मत है कि 'रस' की स्थिति तत्वतः सहृदय की आत्मा में ही है, काव्य उसकी केवल अभिव्यक्ति करा देता है। विश्वनाथ, जगन्नाथ पंडितराज मम्मट आदि परवर्ती आचार्यों ने अन्तिम सिद्धान्त अभिनवगुप्त के 'अभिव्यक्तिवाद' को ही मान्यता दी है।